भगत सुमेरचंद्र जी वर्णी

(एक परिचय)

सपादक ·

डॉ० पन्नालाल साहित्याचार्य पी-एच० डी०, सागर

प्रकाशक

मुन्नालाल नरेशचन्द्र व सुरेशचन्द्र जैन, जगाधरी

(बाहुबली मेटल एण्ड स्टील उद्योग, जगाधरी)

फोन न० ४५६७

(विपल मैटल प्रोडक्ट, जगाधरी)

फोन न० ४२८३

विषयानुक्रमणिका

प्रकाशकीय

माननीय वन्धुगण,

हर्ष का अवसर है कि आज मुझे प्रात -स्मरणीय पूज्य पिता जी के जोवन-परिचय रूप यह पुस्तक अर्पणकरने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

वहुत दिनो से मेरी यह हार्दिक इच्छा थी कि अपने तथा समाज के हितार्थ पूज्य पिता जो का आदर्श जीवन-चरित्र प्रकाशित किया जाय।

मै पूज्य प० पन्नालाल जी धर्मालकार काव्यतीर्थ, मधुवन व प० शिखरचन्द्र जी न्यायतीर्थ ईसरी व प० वशोधर जी न्यायतोर्थ जियागज व सतो की सवेदना पत्रावलो व शोक प्रस्ताव जो विविध स्रोतो से आये हुये है, सव ही महानुभावो का आभारी हू। विशेषकर पूज्य गुरुवर १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी महाराज जी का आभारी हूँ जिनकी कृपा ओर सदुपदेश की यह महिमा है कि पूज्य पिता जी ने समाधिपूर्वक इस नश्वर शरोर को त्याग कर अपनी भावना व लक्ष्य को पूर्ण किया तथा आत्मकल्याण किया। मैं पूज्य पन्नालाल जी साहित्याचार्य पी-एच० डी० सागर वालो का भी आभारी हूँ जो आपने इस जीवन परिचय को क्रम से शोध कर सपादन किया।

पुस्तक छापने मे गीता प्रिटिंग एजेन्सी के मालिक श्री सत्य-नारायण ने वडी तत्परता का परिचय दिया तथा अन्य जिन महानुभावो ने भी किसी प्रकार का सहयोग दिया उन सभी का आभारी हूँ।

दि० १८ अगस्त १९८० — मुन्नालाल जैन
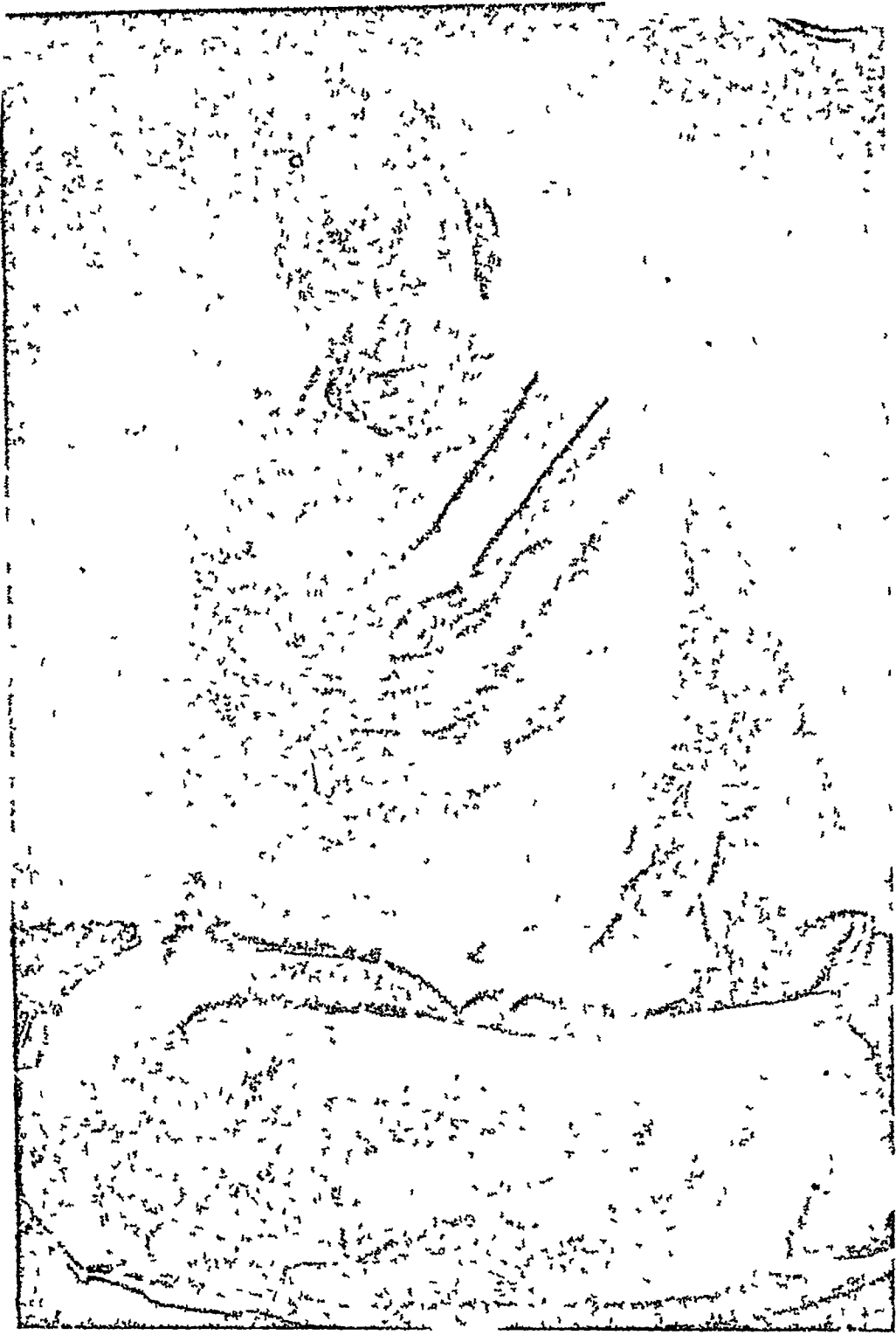
श्री ब्र० भगत सुमेरचन्द जी वर्णी, जगाधरी
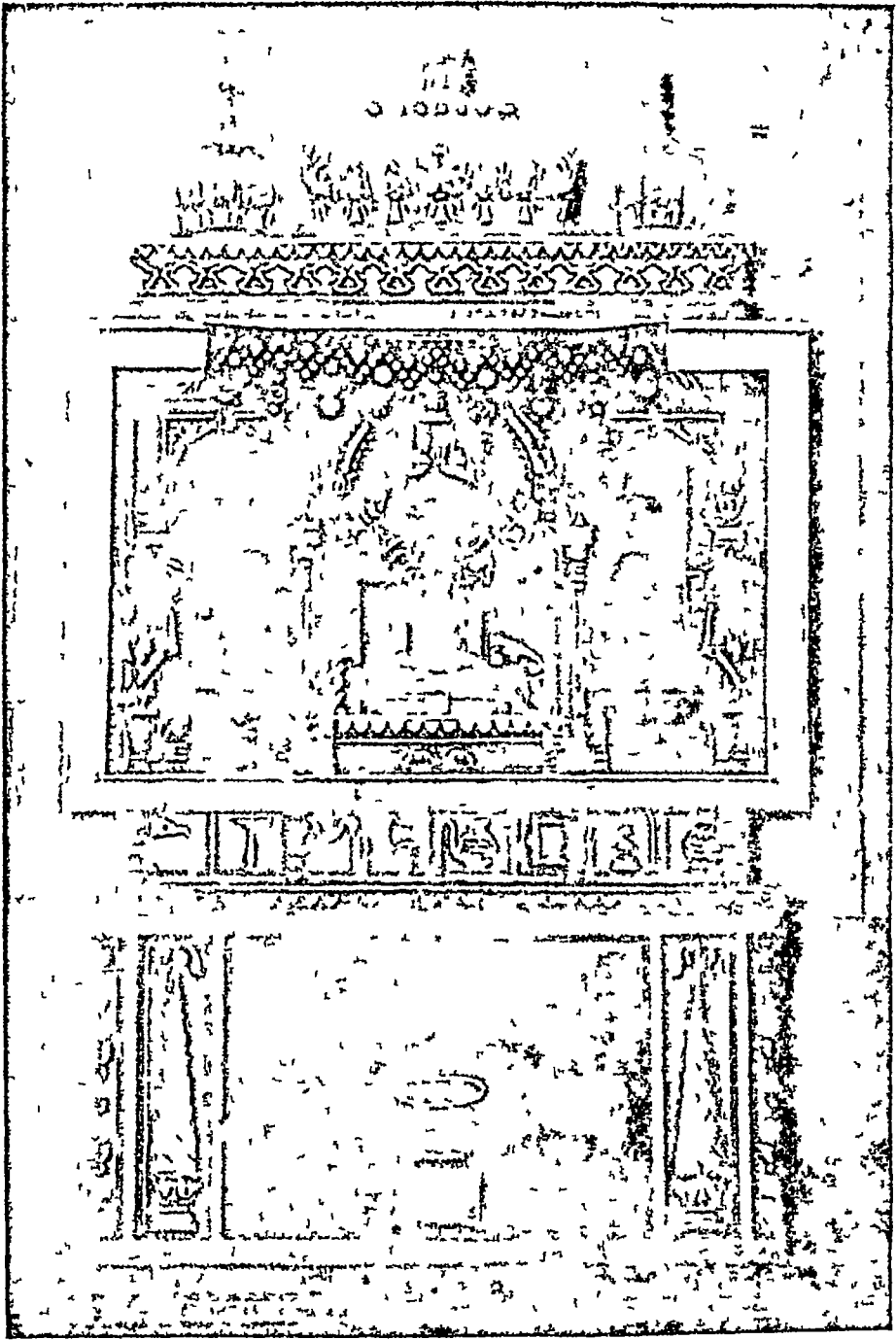
श्री भगत सुमेरचन्द जी वर्णी की स्मृति मे श्री शकुन्तला देवी धर्मपत्नी
श्री मुन्नालाल जी द्वारा निर्मापित वेदी ·
निर्माण वर्ष —वीर नि० स० २४६२ सन् १६६४

श्रद्धेय भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी
: एक परिचय :

श्रद्धासुमन

श्री भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी, पूज्यवर गणेशप्रसाद जी वर्णी के साथ ईसरी मे रहते थे और विहार काल मे उनके साथ ही विहार करते थे। यद्यपि वर्णी जी सागर से दूर ईसरी मे रहते थे तथापि प्रसगवश वर्ष मे एकाधबार उनके दर्शन हो ही जाते थे। उनके दर्शन के प्रलोभन से कोड़रमा, गया, राची तथा गिरीडीह आदि स्थानो से यदि पर्यूपण पर्व आदि का कोई निमन्त्रण आता था तो मैं शीघ्र ही स्वीकृत कर लेता था।

वर्णी जी के पास आते-जाते रहने से भगत जी से भी अच्छा परिचय हो गया था। पूज्य वर्णी जी की जीवन गाथा द्वितीय भाग की पाण्डुलिपि तैयार कर उन्हे सुनाने के लिए ईसरी गया था। पाण्डुलिपि सुनाते समय जो पक्तिया मुझे अत्यन्त रुचिकर लगी मैं उन्हें मुद्रण के समय भिन्न टाइप मे कपोज कराने के उद्देश्य से लाल पेन्सिल से अनुरञ्जित करना चाहता था। दो-तीन बार अपना बेग झाड़कर देख लिया पर उसमे लाल पेन्सिल नही निकली। पास मे बैठे भगत सुमेरचन्द्र जी अपने पास की लाल पेन्सिल का एक टुकड़ा झट से उठा लाये और बोले—यह लीजिए, लाल पेन्सिल। पाच-छ दिन तक पाण्डुलिपि का वाचन चलता रहा तथा भगत जी आदि त्यागीवर्ग वर्णी जी के साथ उसे मनोयोग से सुनते रहे।

ईसरी से वापिस आते समय मैं भगत जी की पेन्सिल वापिस करना भूल गया। सागर आने पर मैंने भगत जी को लिखा कि आपकी पेन्सिल भूल से मैं वापिस नही कर पाया। पत्र के उत्तर मे भगत जी

ने लिखा कि आपकी निर्मलता प्रशसनीय है, पेन्सिल कोई बडी चीज नही है। इस विकल्प को आप मन मे न रक्खें।

पूज्य वर्णी जी के साथ भगत जी सागर भी पधारे थे। यहा गुलाबचन्द्र जी जौहरी के बाग मे उस समय उदासीनाश्रम खुला था। वर्णी जी ने भगत जी को उसका अधिष्ठाता बनाया था। एक दिन हमारे घर पर वर्णी जी के साथ कुछ आगन्तुक विद्वानो और त्यागी वर्ग का निमन्त्रण था। भगत जी भी आये थे। हमारे यहा बुन्देलखण्ड के रिवाज के अनुसार कच्ची-पक्की दोनो प्रकार की रसोई बनी थी अर्थात् पूडी, लड्डू तथा दाल भात आदि। भोजन के उपरान्त भगत जी बोले—हमारे प्रान्त मे तो सुबह कच्चा ही भोजन बनता है और शाम को पक्का ही परन्तु यहा कच्चा-पक्का साथ-साथ बनता है। मैं कुछ कहूँ कि वर्णी जी कहने लगे कि यहा त्यागी वर्ग अधिकाश प्रात काल ही भोजन करते है शाम को नही। यदि प्रात काल कच्चा ही भोजन बनाया जावे तो वे पक्के भोजन से वञ्चित रह जावे। अत यहा सुबह-शाम दोनो समय का भोजन एक साथ बनाया जाता है। भगत जी इस समाधान को सुनकर बोले, अच्छा यह बात है। अब समझा मैं कच्चे-पक्के भोजन की बात।

एक बार वर्णी जी नैनागिरि पैदल चल रहे थे साथ मे भगत जी तथा अन्य भी कुछ लोग थे। बण्डा से दलपतपुर तक छ-सात मील के मार्ग मे मैंने भी पैदल चलने का विचार किया। भगत जी के चप्पल की एक कील निकल गई थी जिससे उन्हे चलने मे असुविधा हो रही थी। कुछ दूर चलने पर सडक पर लोहे की एक कील पडी दिखी, भगत जी ने उसे उठा कर चप्पल को ठीक करना चाहा परन्तु भगत जी ने ज्यो ही वह कील उठाई कि मैंने हँसते-हँसते कहा—निहित वा पतित वा—भगत जी ने उसे सुनकर तत्काल वह कील फेक दी और बोले—गलती हो गई। वर्णी जी इस बात से हँस पडे।

भगत जी तत्त्व-प्रेमी और मन्द कषायी जीव थे। जब भी आप से मिलना होता था तब बडे प्रेम से बाल बच्चो तक की कुशल पूछते थे।

गिरीडीह मे आपका समाधिमरण हुआ। अधिकाश देखा-गया है कि जिनकी कषाय मन्द होती है उनका मरण भी शान्त भाव से

होता है। भगत जी के सुपुत्र श्री मुन्नालाल जी जगाधरी वालो की इच्छा हुई कि पूज्य पिता जी का परिचय प्रकाशित करूँ और उसके लिए उनके पास जो सामग्री थी उसे लेकर वे सागर आये। सामग्री में तेरापथी कोठी के मैनेजर स्व० प० पन्नालाल जी काव्यतीर्थ थे तथा प० वशीधर जी न्यायतीर्थ जियागज आदि के लेख थे सन्तो तथा परिचितजनों के सवेदनापत्र, शोक-प्रस्ताव तथा श्रद्धाञ्जलि पत्र आदि थे। मैंने उन्हे देखकर व्यवस्थित किया तथा क्रम से सजोकर प्रकाशन के योग्य बनाया।

मैंने भाई मुन्नालाल जी से यह कहा कि भगत जी के विषय की सामग्री देना तो उचित है ही इसके साथ यदि पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी के द्वारा लिखित समाधि मरण सम्बन्धी पत्र भी प्रकाशित करा दिये जावे तो पुस्तक उपयोगी हो जायगी। भाई मुन्नालाल जी ने कहा कि सब आपके ऊपर छोडता हू, जैसा आप उचित समझे इस कार्य को पूरा कर दीजिए। उनकी स्वीकृति पाकर मैंने वर्णी स्नातक परिषद् सागर से प्रकाशित वर्णी अध्यात्म-पत्रावली प्रथम भाग के अन्त मे दिये हुए समाधिमरण पत्रपुञ्ज से कुछ पत्र सकलित कर लिए। कुछ पत्र सर सेठ हुकमचन्द्र जी इन्दौर के द्वारा भी ब्र० छोटे-लाल जी के तत्त्वावधान मे प्रकाशित अध्यात्म-पत्रावली से भी लिए। ये पत्र पूज्य वर्णी जी ने भगत जी को उनके नामोल्लेख पूर्वक लिखे थे। इस पुस्तक मे श्रीमान् शिवलाल जी कृत समाधिमरण तथा भगत जी को अत्यन्त प्रिय इष्ट प्रार्थना भी दी जा रही है। एक बार अपनी पौत्री प्रेमलता के पाणिग्रहण के प्रसग पर शुभाशीर्वाद के रूप मे एक पुस्तिका छपवाई थी। स्त्रियो की शिक्षा के लिए उपयोगी जान अन्त मे उसे भी प्रकाशित कर रहा हूँ।

इस पुस्तक के लेखको मे श्री प० पन्नालाल जी धर्मालकार और प० वशीधर जी न्यायतीर्थ अब जीवित नही है। समवेदना पत्र और श्रद्धाञ्जलिया भेजने वाले महानुभावो मे कितने इस समय विद्यमान है यह मैं नही जानता ? पुस्तक के प्रकाशन मे बहुत विलम्ब हुआ फिर भी जिन महानुभावो ने भगत जी के प्रति धर्मानुरागवश जो शब्दावली भेजी है संपादक के नाते मैं उन सब के प्रति आभारी हू। भाई मुन्नालाल जी और नरेशचन्द्र व सुरेशचन्द्र सुपुत्र श्री मुन्ना-

लाल धन्यवाद के पात्र हैं जो पूज्य पिता जी व दादा जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापनार्थ इस परिचय पत्रिका का प्रकाशन करा रहे हैं। समाधिनिष्ठ भगत जी के जीवन चरित्र से सद्गृहस्थ भी शिक्षा ग्रहण करे और अपना शेष जीवन सयमाचरण मे व्यतीत करे। यह पुस्तक प्रकाशन का प्रयोजन है। अन्त मे 'मेरी भी समाधि हो' इस कामना के साथ पूज्य भगत जी के चरणो मे अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

सागर
२०-३-८०

विनीत
पन्नालाल साहित्याचार्य
सम्पादक

जीवन झांकी

□ स्व० पं० पन्नालाल जी काव्यतीर्थ, धर्मालंकार, मधुवन

इस परिवर्तनशील ससार मे कुछ ऐसे भी महापुरुष उत्पन्न होते है जो अपनी प्रतिभा और पुरु५ार्थ के बल पर देश, समाज तथा आत्मकल्याण के मार्ग मे अग्रसर होते रहते है। जैनधर्म ऐसे जीवद्रव्य की सत्ता को स्वीकृत नही करता जो सदा से कर्मकालिमा से रहित शुद्ध निरञ्जन हो। किन्तु इसके विपरीत यह स्वीकृत करता है कि अनादिकालीन अशुद्ध जीव आत्मपुरुषार्थ के द्वारा कर्मकालिमा को नष्ट कर निरञ्जन-परमात्मा बनता है। कालक्रम से हुए अनन्तानन्त चौबीस तीर्थकर भी अशुद्ध से शुद्ध पर्याय को प्राप्त हुए है।

अशुद्ध से शुद्ध बनने का पुरुषार्थ सम्यग्दर्शन होने पर ही शुरू हो पाता है उसके बिना नही। उसका कारण भी यह है कि जब तक कर्म नोकर्म और भावकर्म से भिन्न ज्ञाता द्रष्टा स्वभाव वाले आत्मा के अस्तित्व का निश्चय नही होता तब तक पुरुषार्थ कैसा ? सम्यग्दृष्टि निश्चय करता है कि मैं एक स्वतन्त्र जीव द्रव्य हू। यद्यपि वर्तमान में मेरी अशुद्ध पर्याय चल रही है और उसके कारण मैं चतुर्गतिरूप ससार मे परिभ्रमण कर रहा हूँ तथापि यह सब मेरा स्वभाव नही है, कर्मोपाधि जन्य होने से औपाधिक भाव है, इसे नष्ट किया जा सकता है। इसी निश्चय के आधार पर वह आत्मसाधना के मार्ग मे अग्रसर होता है।

भगत श्री सुमेरचन्द्र जी वर्णी भी इसी श्रेणी के महानुभाव थे जिन्होने आत्मस्वरूप को समझ श्रुत-परिचित और अनुभूत भोगो से विरक्त हो आत्मकल्याण का मार्ग अङ्गीकृत किया। धीरे-धीरे गृहस्थी के जजाल से उन्मुक्त हो दिगम्बर मुद्रा में समाधिमरण किया।

जन्म और वंश परिचय :

श्री भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी का जन्म जगाधरी निवासी श्री लाला मूलराज जी अग्रवाल और उनकी धर्मपत्नी श्री सोनाबाई जी, (इस धर्मात्मा दम्पती) से हुआ था। लाला मूलराज जी समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे तथा अपने सद्गृहस्थोचित आचार-विचार से पजाब प्रान्त मे पर्याप्त ख्याति प्राप्त थे। किराना के व्यापारी थे और प्रामाणिक लेन देन के कारण जनता की श्रद्धा के केन्द्र थे।

बाल्यावस्था मे सुमेरचन्द्र अत्यन्त चपल एव नटखटी थे अत तीसरी कक्षा की उर्दू भर पढ सके। व्यापारी वर्ग के लिए उस समय इतना ज्ञान पर्याप्त समझा जाता था। स्कूल छोड़कर आप दुकान पर बैठने लगे। धीरे-धीरे व्यापार के क्षेत्र मे आपकी प्रतिभा का अच्छा विकास हुआ और उसके फलस्वरूप माल लेने के लिए कानपुर तथा दिल्ली आदि की मण्डियो मे जाने लगे। प्रतिभा एक ऐसा प्रकाश-पुञ्ज है कि उसे जिस दशा मे प्रसारित किया जाय वह उसी दिशा को आलोकित करने लगता है। भगत सुमेरचन्द जी की प्रतिभा का प्रकाश-पुञ्ज व्यापारिक दिशा मे इतनी तन्मयता से प्रसारित हुआ कि वे एक प्रसिद्ध व्यापारी हो गये। पुत्र को कुशल व्यापारी समझ पिता मूलराज जी अपने आपको भारहीन समझने लगे। भगत सुमेरुचन्द्र को जिन-पूजा, स्वाध्याय तथा अन्य धार्मिक कार्यो को अभिरुचि अपने माता-पिता से विरासत मे मिली थी इसलिए वे इन सब कार्यों कौ बडी श्रद्धा और भक्ति से करते थे।

मङ्गल परिणय —

सोलह वर्ष की अवस्था मे आपका मङ्गल परिणय रामपुर मनिहारान के निवासी लाला शीतलप्रसाद जी अग्रवाल की पुण्यशीला कन्या खजलीदेवी के साथ सम्पन्न हुआ। भाग्य से खजलीदेवी और भगत-सुमेरचन्द्र का सयोग मणि काञ्चन सयोग के समान गार्हस्थ्य धर्म को सुशोभित करने वाला सिद्ध हुआ।

धार्मिक कार्यों मे विशिष्ट अभिरुचि देख जनता मे आपका 'भगत जी' नाम प्रसिद्ध हो गया। इनकी प्रेरणा प्राप्त कर जगाधरी की समाज भी जैनधर्म को प्रभावना के कार्यों मे अग्रसर रहती थी। खजलीदेवी से दो पुत्रो का जन्म हुआ। गृहस्थी का कार्य आनन्द से

चल रहा था कि साधारण-सी बीमारी के बाद खजलीदेवी का स्वर्गवास हो गया। उस समय भगत सुमेरचन्द्र की अवस्था सिर्फ २५ वर्ष की थी अतः पिता मूलराजजी ने इनके द्वितीय विवाह का आयोजन किया। पिता का आग्रह देख भगत सुमेरुचन्द्र जो ने नम्र शब्दो मे निवेदन किया कि लाला जी! विवाह के फलस्वरूप आपके दो नयनाभिराम पोते उपस्थित हैं अत मुझे पुन कीचड मे न फसवाइये। जिस बन्धन से एक बार मुक्त हो गया अब उसी बन्धन मे नही पडना चाहता हूँ। 'इन बालको को सुशिक्षित कर कार्यवाहक बनाऊ', यही क्या कम भार मेरे सिर पर है ?

पुत्र का यह उत्तर प्राप्त कर लाला मूलराज गम्भीर विचार मे पड़ गये। अपने बडे पुत्र ज्योतिप्रसाद से विचार कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यदि सुमेरचन्द्र का विवाह नही किया गया तो यह गृहस्थी से विरक्त हो जायगा और फलस्वरूप सारा व्यापार चौपट हो जायगा। लाला मूलराज व्यापारी मनोवृत्ति के थे। फल यह हुआ कि उन्होने मित्रो से दबाव डलवाकर कालका निवासी लाला मक्खनलाल जी की पुत्री कस्तूरीबाई के साथ भगत सुमेरुचन्द्र का दूसरा विवाह कर दिया।

दूसरा विवाह होने के बाद इनके मन मे एक शल्य कांटे की तरह चुभने लगी। विमाता, प्रथम पत्नी के बच्चो के साथ कैसा कटुक बर्ताव करती है ? यह वे अन्य घरो मे देख चुके थे। अत सर्वप्रथम इन्होने इसी शल्य का निराकरण करने के लिए पत्नी से अनुरोध किया कि यदि तुम मुझे गृहस्थी मे देखना चाहती हो तो इन दोनो बच्चों को अपना बच्चा समझ कर प्यार करना अन्यथा ऐसा न हो कि तुम्हे पीछे पछताना पड़े। सुश्री कस्तूरीबाई खानदानी लडकी थी अत उसने पति के इस अनुरोध को ध्यान से सुना ही नही—जीवन भर उसका पालन किया। उसने कभी इन पुत्रो को दूसरा नही समझा। भाग्य की बात कि कस्तूरीबाई से किसी पुत्र-पुत्री का जन्म नही हुआ। पत्नी के सरल और सहृदय व्यवहार से भगत सुमेरुचन्द्र जी नि शल्य होकर व्यापार और समाज के कार्यों मे सलग्न रहने लगे।

गार्हस्थ्य जीवन की विशेषताएं :

भगत सुमेरचन्द्र जी न केवल जैन समाज के प्रीतिपात्र थे किन्तु जगाधरी की अन्य सभी जनता इनके साथ प्रीति और श्रद्धा का

व्यवहार करती थी। इसका कारण यही था कि आपके व्यवहार मे सचाई, वाणी मे स्पष्टवादिता और सत्कर्मो मे अद्भुत साहस था। एक बार सरकारी आज्ञा से शहर के कुत्ते मारे जाने लगे। विषाक्त मिठाई खाकर कुत्ते जब सडक की पटरियो पर छटपटाते हुए प्राण छोडने लगे तब इनका हृदय द्रवीभूत हो गया इस हिंसा को रोकने के लिये वे एक शिष्ट मण्डल को लेकर कलैक्टर के पास गये। कलैक्टर ने इनकी बात को ध्यान से सुना तथा अहिंसा को बहाल देते हुए कहा कि जिन कुत्तो के गलेमे पालतू कुत्तो के सबूत का पट्टा होगा उन्हे नही मारा जायगा। इस आधार पर जगाधरी के सभी कुत्तो के गले मे आपने अपने खर्च से पट्टे डलवा दिये। भगत जी के इस कार्य से जनता के हृदय मे आपके प्रति आदर का भाव बढ गया।

आप कांग्रेस के कार्यो मे भी सदा अग्रसर रहते थे। स्पष्ट-वक्ता होने के कारण शासन के अत्याचारो की खूब आलोचना किया करते थे अत जगाधरी की जनता ने आपको नगर कांग्रेस कमेटी का उपाध्यक्ष निर्वाचित किया था। आपके उत्साह, साहस, देशप्रेम और सत्कर्मों से कांग्रेस का स्तर देशोत्थान और देश जागरण मे सदा बढता रहा।

सामाजिक बुराइयाँ दूर करने की ओर भी आपका सदा ध्यान रहता था। एक बार चूडी पहिनाने वाले मुसलमान चूडीगिरी के असभ्य व्यवहार से आपको बडा कष्ट हुआ। उसके विरोध मे आपने नवयुवको का सगठन कर काच की चूडियो की दुकान खुलवाई और अपने साथियो को लेकर घर-घर महिलाओ को चूडियाँ पहिनाने की व्यवस्था कर दी। फलत हिन्दू युवको की झिझक मिट गई और उन्होने घर-घर जाकर चूडियाँ पहिनाने का धन्धा स्वीकार कर लिया। यह बडे साहस और सरक्षक मनोबल का प्रयत्न था।

निर्वृत्ति की ओर :—

भगत जी की दूसरी पत्नी ने भी जब तेतीस वर्ष की अवस्था मे देहोत्सर्ग किया तब उन्हे निश्चय हो गया कि मैं ससार के भोग भोगने के लिये नही आया हूँ। मेरा भाग्य मुझे आत्मसाधना के लिए प्रेरित कर रहा है। उसने मुझे दो बार स्त्री के बन्धन से मुक्त किया है अत यह आत्महित साधन का सुअवसर है। दोनो लड़के समझदार हो चले

है उन्हे व्यापार में लगा कर आत्महित का मार्ग अंगीकृत करना चाहिये। यह सब विचार कर आपने अपने बडे भाई ज्योतिप्रसाद जी से कहा कि भाई साहब ! दुकान का काम तो आप सम्हालते ही है और दोनों लड़के आपकी आज्ञा मे है। अब आप मुझे अवकाश दे दें तो मैं निराकुल होकर धर्मसाधन करूँ। ज्योतिप्रसाद जी ने तीसरे विवाह का प्रस्ताव रक्खा परन्तु भगत जी को वह रुचिकर नही हुआ। दोनों हाथों से अपने कान पकड़ कर बोले अब तीसरी बार गलती नही करूगा।

भगत जी का समय जिनेन्द्रपूजन, स्वाध्याय तथा धर्म की प्रभावना मे विशेष रूप से बीतने लगा। शक्ति के अनुसार अनेक नियमो का पालन करने लगे। वे सदा सत्सग की खोज मे रहते थे कि कोई ऐसे महानुभाव का समागम प्राप्त हो जिससे मेरी विरक्ति का परिणाम वृद्धिङ्गत होता रहे।

दैनंदिनी के पृष्ठों पर उभरी हुई भगत जी की भव्य भावना :

भगत जी जब कभी अपने मनोभाव दैनदिनी मे अङ्कित किया करते थे। निम्नाङ्कित पक्तियों मे उनका विरक्तभाव उभरकर सामने आ जाता है—ऊँ नम· सिद्धेभ्य। अब मै अपनी नियमावली लिखता हू। मैं जो हू एक चैतन्य आत्मा। इस पर्याय मे सुमेरचन्द्र कहलाता हू। अपने चित्त मे लघुता को प्राप्त होता हुआ इस पुस्तक मे याद रखने वाले अपने नियमो का तथा आइन्दा के प्रोग्राम को लिखता हूं। मेरी क्रिया कोई श्रेणीबद्ध नही है। कोई नियम कही का कोई नियम कही का। यथावत प्रतिभा के भाव से मेरे नियम नही है। मेरी शक्ति अल्प है और द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव बदला हुआ है। श्री गुरु के साक्षात् मुखारविन्द के उपदेश के बिना पञ्चमकाल मे सार्थक व्रत नही सध सकता और श्री गुरु महाराज इस पञ्चमकाल मे इस क्षेत्र मे दीखते नही। इस वास्ते मै पाक्षिक अवस्था को ही धारण करता हू। प्रथम अवस्था मे जो मेरी भूल हुई है उससे निन्दता हू। जो हे सुमेरु-चन्द्र वाले आत्मा ! तूने इस ससार मे मनुष्य जन्म पाया है। सैंतीस वर्ष तक कुछ आत्मानुभव नही किया। विषय कषाय मे ही सब उम्र गमाई। अब भी क्या भूल मे रहना चाहिये ? अन्त दिन की खबर नही किस दिन परलोक हो जावे।

अव सिर्फ इतना विचार करना वाकी है कि जैसे कोई परदेश मे जाता है तो सिर्फ भोजन, लोटा, डोर, कुछ कपडा और थोडा वहुत दाम आदिक प्रयोजनभूत वस्तुए साथ लेकर चल पडता है। वस, त्यो ही मुझे भी विचार करना जरूरी है। परलोक को गमन करते समय कौन सामग्री साथ जाने वाली है उसे ही लेना, वाकी सव छोड देना।

ऐसा विचार करने से यही ठीक जान पडा कि सुखदायक धर्म ही परलोक मे साथ जायेगा और सव ठाठ यही पडा रह जायेगा। तू अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य का धनी चिदानन्द ! क्या यह दुर्गन्धमय शरीर रूपी कुटीर तेरे वसने का ठौर है ? हरगिज नही, हरगिज नही। तेरी वस्ती तो पवित्र, उज्ज्वल, सगुणमयी तथा सासारिक दु खो से रहित शिवपुरी है। उसकी इच्छा एक दिन भी नही की और रात-दिन मिथ्यात्व की विषम नीद मे गाफिल पडा सोता रहा। विषयो मे सुख मान-मान आशा मे ही सैतीस वर्ष वीत गये। गये हुए दिन नदी के जल के दृष्टान्तवत् उल्टे नही आते।

देखो कर्म की विचित्रता। ये कर्म कैसा-कैसा वदला लेते है और जीव को कैसा-कैसा नाच नचाते है। और जीव भी कैसा वेखवर होकर गाफिल रहता है। कुछ भी अपनी वर्तमान अवस्था को नही देखता है कि मैं कैसे घर मे घुस रहा हू ? कोई चाण्डाल के घर मे भूलकर चला जाय तो एक घडी भी रहना अच्छा नही लगे परन्तु यह शरीर मलादिक से भरा है। ससार मे जितने अपवित्र पदार्थ है उन सभी को एकत्रित कर यह एक मनुष्य शरीर नामक कैदघर वनाया है। यह हाडो का थम्भ है, मलमूत्र से भरा चमडे से लपेटा और दुर्गन्ध से परिपूर्ण है। वर्तमान मे जो कैदखाने हैं वे तो पत्थर वगैरह के है साफ-सुथरे हैं पर यह शरीर रूप कैदखाना हाड और मास से वना है ऊपर से साफ दिखता है पर भीतर अपवित्र वस्तुओ से भरा है। यह शरीर रूपी कैदघर यदि काष्ठ या पत्थर का होता तो यह जीव कभी भी मोह नही तजता, विल्कुल वेखवर रहता। देखो-देखो, कैसी भूल है ? यह जीव अपवित्र शरीर मे ही पडा रहना चाहता है। यह शरीर तव भी स्थिर नही रहता, देखते-देखते नष्ट हो जाता है। इसमे ममत्वभाव रखना अच्छा नही। यह शरीर रूपी जेलखाने का कमरा ऐसा है अव मुझे जान पडा।

विचार कर देखा तो जान पडा कि अन्य जीवों की अपेक्षा यह मेरा शरीररूपी कैदघर कुछ अच्छा है। इस ससार मे बहुत से कैदी इस प्रकार के हैं कि जिन्हे अङ्गहीन दुर्गन्धमय शरीर मिला है तथा भोजनपान भी अच्छी तरह वक्त पर नही मिलता। कपडा वगैरह तो मिलना बहुत कठिन है। हमारी अवस्था उन सबसे बहुत अच्छी है। दुनिया में चाण्डाल तथा म्लेच्छ आदि जातियो की बहुतायत है। हमारे पूर्वजन्म के शुभकर्म ने इस चतुर्गतिरूप जेल मे मुझे यह मनुष्य शरीररूप सुन्दर कमरा दिया है। आर्यदेश, अम्बाला जिला तथा जगाधरी शहर मिला है। उत्तम इक्ष्वाकुवशी जैनधर्म के प्रतिपालक श्रीमान् हजारीमल के सुपुत्र मङ्गलसेन तत्पुत्र मूलराज से मेरा जन्म हुआ है। ज्योतिप्रसाद जी बडे भाई हैं। अग्रवाल मित्तल गोत्र है जिसमे सनातन जैनधर्म के सिवाय अन्य धर्म का सम्बन्ध नही। इस वास्ते इस शुभ कर्म को धन्यवाद है जिसने ऐसा कमरा दिया। तात्पर्य यह है कि मनुष्य जन्म का पाना अत्यन्त कठिन है। मुझे इस वक्त सब समागम अच्छे मिले है। इन्द्रिय पूर्णता और भाग्य माफिक द्रव्य भी प्राप्त हुआ है। ग्रन्थो के अभ्यास से बुद्धि भी कुछ निर्मल है। दो पुत्र भी है। यद्यपि कर्मयोग से वीर निर्वाण सवत् २४५७ मे पत्नी का स्वर्गवास हो गया है तो भी अब मुझको सतोष है। तीन बार श्री सम्मेदशिखर की यात्रा की, दो बार श्री निर्वाणक्षेत्र गिरिनार जी की यात्रा की तथा एक बार श्री जैनबिद्री वा चम्पापुरी पावापुरी की यात्रा की। श्री निर्वाणक्षेत्र सम्मेदशिखर जी की यात्रा और करूगा।

रात्रि भोजन का सर्वथा त्याग, कन्दमूल और बाईस अभक्ष्य का त्याग तथा क्रिया से भोजन करने का नियम है। यह सब है परन्तु आपदा की फासी मे लगा रहना नही छूटा। जब मरने का समय आया तब कुछ चेत पडी। अब क्या बन सकता है ? अब तो झोपडी जलने लगने पर कुआ खोदना जैसा है। मैं हाल गिरीडीह निवासी श्रीमान् बाबा किशनलाल जी उदासीन पाक्षिक श्रावक को शतश धन्यवाद देता हू। मेरी इच्छा बहुत दिनो से थी कि सन्तोष ग्रहण करू। वह मुराद पूर्ण होने का अवसर आज हाथ आया। सुख का लक्षण निराकुलता है। ससार मे द्रव्य क्षेत्र काल भाव के अनुसार जितनी आकुलता घटेगी उतना ही आनन्द आवेगा। ऐसा समझ कर मैने बाबा किशन-

लाल जी को अपनी नियमावली सुनाई। श्री वीर निर्वाण सवत् २४५८ विक्रम सवत् १९९० कार्तिक सुदी षष्ठी की शुभ घडी मे पाक्षिक श्रावक का व्रत लिया। तदनन्तर दैनदिनी के पृष्ठों पर भगत जी के द्वारा लिए हुए नियमो का उल्लेख है।

सत्समागम की ओर :

भगत जी के हृदय मे जो धार्मिक बीज थे वे समय पर पनपने लगे। आप सत्समागम की टोह मे रहते थे। भाग्यवश आपको पूज्य-पाद न्यायाचार्य क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी का सत्समागम प्राप्त हुआ। उनके सपर्क मे विक्रम स० १९९१ मे आये और धीरे-धीरे घर से निकल कर ईसरी मे जम गये। पूज्य वर्णी जी महाराज के रहने से ईसरी का वातावरण अत्यन्त शान्त और धर्म चर्चामय था। आत्म कल्याण के इच्छुक अनेक त्यागी वर्ग का समुदाय यहा निवास करता था।

भगत जी ने ईसरी मे छहढाला से शुरू कर समयसार तक गुर-मुख से पढा, स्वाध्याय द्वारा अपना ज्ञान वढाया तथा वोलने की शक्ति भी बढ़ाई। पूज्य वर्णी जी के साथ-साथ आपने अनेक जगह विहार तथा चौमासा किये और अन्त मे सातवी प्रतिमा के व्रत लेकर अपने नाम के साथ 'वर्णी' पद सम्बद्ध किया। आपके लेख तथा पुस्तक आदि सुमेरुचन्द्र वर्णी के नाम से लिखे जाते थे। वर्णी जी के सत्समागम से आपकी अच्छी प्रगति हुई। आपने यश के साथ आत्मोद्धार का रस भी पाया। यही कारण था कि आपका समाधिमरण वडी सुन्दरता और सचेत अवस्था मे हुआ। ऐसे महापुरुप का जोवन परिचय उपस्थित कर मैं अपने आपको भी सौभाग्यशाली मानता हू। मैं चाहता हू कि समाज के सचेता सज्जन इस जीवन झाँकी से अपने पथनिर्माण मे सहायता लें। मानव जीवन की सफलता सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से विभूपित सयम से ही हो सकती है।

□□

नोट—समाधि का वर्णन 'भव्य समाधि दर्शन' लेख मे देखिए।
—सपादक

श्री भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी

□ श्री पं० शिखरचन्द्र जी न्याय-काव्यतीर्थ, शास्त्री, ईसरी

हमारे चरित्रनायक भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी ने पजाब प्रान्त के अन्तर्गत जगाधरी नगरी मे लाला मूलराज जी की धर्मपत्नी सोनाबाई की कुक्षि से कार्तिक शुक्ला नौमी विक्रम सवत् १९५३ मे जन्म लेकर सन्त परम्परा की स्वर्णश्रृङ्खला मे एक और कडी जोड़कर उसमे चारचॉद लगाने की उक्ति को चरितार्थ किया था।

स्वभाव से ही नटखटी होने तथा पिता जी के लाड-प्यार के कारण आपकी शिक्षा सिर्फ तीसरी कक्षा तक उर्दू मे हो पाई थी। थोडा सा अग्रेजी का भी अभ्यास था। क्रमश आपके दो विवाह हुए। प्रथम पत्नी से दो सुपुत्र मुन्नालाल और सुमतिप्रसाद उत्पन्न हुए जो सुयोग्य शिक्षित नागरिक बनकर व्यापार कर रहे है। दूसरी पत्नी का नि सन्तान देहावसान हो गया।

उन दिनो देश मे राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा था, उसमें भी आपने काग्रेस के गण्य-मान्य कार्यकर्ता के रूप मे भाग लिया। एक बार आप गिरफ्तारी के बाद निरपराध ठहराये जाकर मुक्त कर दिये गये थे। दूसरी पत्नी का भी देहान्त हो जाने के बाद आपकी विरक्ति का परिणाम बढ गया। आपका अधिकाश समय पूजन स्वाध्याय आदि में व्यतीत होता था। भक्ति की विशेषता देख जगाधरी मे आपकी 'भगत जी' नाम से प्रसिद्धि हो गयी थी।

आप कई स्थानीय पारमार्थिक सस्थाओ के पदाधिकारी थे और बडी तत्परता से उन सस्थाओ की देख-रेख रखते थे। जब आपकी ४५ वर्ष की आयु थी तब आपने विचार किया कि वर्ष मे एक माह किसी साधु के सत्समागम मे बिताया जाय, जिससे कुछ मोह

घटे और ज्ञान वृद्धि हो। इसके लिए आप कुछ दिन दिल्ली निवासी वावा किशनलाल जी के सपर्क मे रहे। इसके पश्चात् तीर्थ यात्रा के समय अनायास ईसरी मे पूज्य क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी के सत्सग से इतने प्रभावित हुए कि वर्ष मे दो माह उनके सत्सग मे रहने का नियम ले लिया। कुछ वर्ष वाद तो ईसरी मे पूज्य वर्णी जी के पास ही रहने लगे।

इसी वीच पूज्य वर्णी जी के साथ पैदल विहार करते हुए सागर आये। सागर मे एक उदासीनाश्रम की स्थापना हो गई जिसके अधिष्ठाता का पद आप को सौपा गया। सागर से जवलपुर एव उत्तर प्रान्त की यात्रा के समय भी आप पूज्य वर्णी जी के साथ-साथ ही रहे। विक्रम सवत् २००६ का चातुर्मास दिल्ली मे हुआ था। वहाँ से उत्तर प्रदेश के नगरो मे घूमता हुआ यह सघ आपकी जन्म-भूमि जगाधरी मे आया। इसी समय आपने श्री स्याद्वाद महाविद्यालय के ध्रौव्यफण्ड मे १००१) को थैली भेट की। यहाँ से क्षेत्र हस्तिनागपुर पहुचे। वहाँ पर आपने आठवीं प्रतिमा के व्रत लिये।

आप वडे ही कर्मठ कार्यकर्ता थे। सघ के साथ विहार करते हुए आप-ने कई जगह पाठशालाए एव स्वाध्यायशालाए खुलवाई। आप व्रती वर्ग मे शिथिलाचार देखने के आदी नही थे। शिथिलाचारी व्रतियो की समालोचना करने मे आप कभी नही चूकते थे। वर्णीसघ केइटावा चातुर्मास के पूर्व एटा मे आपने एक स्कूल खुलवाया तथा भिण्ड में एक पाठशाला की स्थापना कराई। वरुआसागर मे व्रती सम्मेलन का अधिवेशन कराया। उत्तर प्रदेश मे विहार करने के वाद वर्णी सघ पुन सागर आया। इसके पूर्व फिरोजावाद मे पूज्य वर्णी जी की हीरक जयन्ती का समारोह वडे उल्लासपूर्ण वातावरण मे हुआ था। लाला छदामीलाल जी ने अपने भव्य मन्दिर का शिलान्यास उस समय कराया था। काका कालेलकर के हाथ मे पूज्य वर्णी जी को वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ भेट किया गया था। पूज्यवर श्री १०८ आचार्य सूर्य सागर जी महाराज की अध्यक्षता मे व्रती सम्मेलन हुआ था जिसमे व्रती वर्ग के उत्थान के लिए अनेक विषयो पर चर्चा हुई थी। वर्णी सघ ने सागर चातुर्मास के वाद जव पुन ईसरी की ओर विहार किया तव भी आप साथ मे थे। इस तरह आपने वुन्देलखण्ड, उत्तर-

प्रदेश, पञ्जाब, मध्यप्रदेश तथा विहार प्रान्त के अनेक नगरो में विहार कर जैनाजैन जनता मे अच्छी धार्मिक जागृति उत्पन्न की।

तत्त्व निर्णय की दृष्टि से आपने एक बार ब्र० छोटेलाल जी तथा ब्र० दुलीचन्द्र जी के साथ सोनगढ की भी यात्रा की थी। अन्त मे यत्र-तत्र विहार करने के बाद आप स्थायी रूप से पूज्यवर्णी जी के साथ ईसरी मे रहने लगे। आपके पास जो भी आता था उसे आप कोई-न-कोई नियम अवश्य दिलाते थे। आपका अधिक समय अध्ययन और मनन मे व्यतीत होता था। 'मोक्षमार्ग की वास्तविक दृष्टि को लोग प्राप्त कर सके इस अभिप्राय से आपने वीरनिर्वाण सवत् २४८२ में अपने जियागज चातुर्मास के समय आचार्य कल्प प० टोडर मल्ल जी के मोक्षमार्ग प्रकाशक के सातवें अधिकार का प्रकाशन श्री सेठ कन्हैयालाल सुवालाल काला जियागज से कराया था और उसकी प्रतिया फ्री वितरण करायी थी।

अभी इस वर्ष जब वर्णी जी ग्रीष्म काल मे हजारीबाग चले गये तब आप जियागज मे थे। पूज्य वर्णी जी का स्वास्थ्य विहार प्रान्त मे ठीक नही रहता, इस अभिप्राय से सागर की जनता ने उन्हे पुन सागर ले जाने की बात उठायी। वर्णी जी का विहार सागर की ओर होने वाला है, यह समाचार सुनकर आप उनसे भेट करने के लिए ईशरी आ रहे थे। आषाढ शुक्ला ५ वि० स० २०१४ की रात्रि को जब आप ईसरी स्टेशन पर रात्रि के १ बजे पुल पर से आ रहे थे तब कुली को देखने के लिए पीछे मुडे तो गलती से पैर फिसल जाने के कारण आप धडाम से नीचे गिर पडे। इससे आपके सिर तथा पैर मे गहरी चोट आ गई। बहुत खून निकल जाने पर भी आपने हिम्मत नही हारी और अपने पास के दुपट्टा से सिर बाध कर पैदल ही आश्रम तक आये।

यहाँ के वैद्य श्री लक्ष्मीचन्द्र जी की चिकित्सा से घाव ऊपर से तो सूखा सा मालूम होने लगा किन्तु वह भीतर ही भीतर घर करता जा रहा था। जब आपके मुख पर विशेष सूजन आ गई तब पूज्य वर्णी जी ने विशेष उपचार के लिए गिरीडीह भेजा। किन्तु वहाँ भी आपको डबल निमोनिया हो गया। इस समय आप निरन्तर अरहत सिद्ध के नामोच्चारण मे लीन रहने लगे तथा आप ने अब अन्त समय समझ कर कार्तिकेयानुप्रेक्षा और समयसार आदि का पाठ करना

प्रारम्भ कर दिया। अन्त में सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग कर मुनि पद धारण कर लिया। आप मे अन्त तक आत्मतेज झलकता था। इस तरह पञ्चपरमेष्ठी का जाप करते-करते ही श्रावण शुक्ला सप्तमी सवत् २०१४ शुक्रवार को प्रात काल ६ बज कर १० मिनिट पर अपने भौतिक शरीर का परित्याग कर दिया। आपके समाधिमरण के समय प० पन्नालाल जी धर्मालकार, प० वशीधर जी न्यायतीर्थ जिया-गज, पं० सुखानन्द जी शास्त्री राची और प० लक्ष्मीचन्द्र जी वैद्य आदि गणमान्य सज्जनो ने अच्छा सहयोग दिया।

आपकी मृत्यु के पश्चात् अनेक गण्यमान्य व्रतियो और विद्वानो ने श्रद्धाञ्जलिया दी। पूज्य वर्णी जी ने तो यहाँ तक कहा कि आज एक बहुत बडा कर्मठ व्रती व्यक्ति ससार से उठ गया। आप ईसरी उदासीनाश्रम के प्रमुख कर्णधार थे। इस महान् आध्यात्मिक सत का जीवन अधिकतर स्वपर हित मे ही व्यतीत हुआ है। अन्त मे पण्डित-मरण करके तो हमारे सामने उस सत ने आदर्श उपस्थित किया है।

□□

पूज्य भगत श्री सुमेरचन्द जी वर्णी (दि० मुनि अवस्था मे)
जन्म कातिक शु० ९ वि० स० १९५३ स्वर्गवास श्रा० कृ० ७ वि स २०१४

१ प० वशीधर जी २ श्री सज्जनकुमार
३ श्री वालचद ४ श्री मुन्नालाल
५ श्री मुखानद ६ श्री सरदारीमल

(वीच मे)
श्री भगत सुमेरचन्दजी वर्णी
(दिगम्वर अवस्था मे)

७ प पन्नालाल धर्मालं० ८ श्री खिचेड़ूमल
९ श्री लक्ष्मीचद वद्य १० ब्र सुरेन्द्रकुमार
११ श्री मगलसेन १२ श्री सोहनलाल
१३ श्री सुमतप्रसाद

भव्य-समाधिदर्शन

□ स्व० पं० वंशीधर जी न्यायतीर्थ, जियागंज

अनेक गुणसागर, चरित्रनिष्ठ, दृढप्रतिज्ञ, स्वात्मानुभवी, सरल-हृदय पूज्य श्री भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी आज हमारे सामने नही हैं। मिति श्रा० कृ० सप्तमी शुक्रवार स० २०१४ दिनाक १९-७-५७ को प्रात काल ६-१० पर मुकाम गिरीडीह (हजारीबाग-विहार) में हम लोगो के देखते-देखते मुनि अवस्था मे आपका समाधिमरण हो गया, चूकि अन्तिम रुग्णावस्था मे लगातार आठ दिनो तक उनकी परिचर्या वैयावृत्त्य द्वारा अपने को कृतार्थ करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। अत उनकी दृढ समाधिनिष्ठा का आँखो देखा किंचित् विवरण प्रस्तुत करना अपना कर्तव्य जान लिखने का उपक्रम कर रहा हूँ।

पूज्य भगत जी के थोडे दिनो के सहवास तथा साहचर्य एवं असीम उपकारो से प्रेरित होकर ही यह कुछ पक्तियाँ लिखी जा रही है जो उनकी महानता की द्योतक हैं।

प्रथम परिचय :

उक्त वर्णी जी से मेरा प्रथम साक्षात्कार दिसबर १९५६ मे उस समय हुआ, जब मैं तीर्थराज की वदना करके ईसरी आया कुछ सामयिक परिस्थितियो से मेरा चित्त उद्विग्न और अशांत हो रहा था, आपने तत्काल ही बिना कुछ कहे ही मुझे अपना पत्र देकर जियागंज (मुर्शिदाबाद--बगाल) जैन पाठशाला मे अध्यापनार्थ भेज दिया और मै वहाँ कार्य करने लगा, यही मेरा उनसे आंशिक परिचय हुआ।

जियागंज में एक मास :

ज्येष्ठ मास के प्रारम्भ में जियागज जैन समाज की अत्यधिक प्रेरणा से मैं भगत जी तथा श्री ब्र० रतनचन्द्र जो मुख्तार, सहारनपुर

वालों को लेने के लिए ईसरी आया। श्री मुख्तार जी तो अनेक कारणों से जा नही सके पर, आप मेरे साथ जियागज पधारे और एक मास से कुछ अधिक वहाँ रहे। इस एक मास के साहचर्य मे मैंने जो उत्कृष्ट त्यागवृत्ति, सरलता, निर्भीकता व अहर्निश आत्मचितन एव स्वाध्याय तत्परता का आदर्श आपमे देखा—तो अनायास आपके प्रति हृदय मे श्रद्धा उत्पन्न हो गई। मैंने देखा—आप प्रतिक्षण स्वाध्यायादि कार्यो मे प्रमादरहित होकर स्व-पर हितसाधन का निरन्तर प्रयत्न करते है। एक क्षण भी व्यर्थ नही खोते, लोकैषणा से तो आप सदा ही दूर रहते है निर्लोभता इतनी कि यदि एक कार्ड की जरूरत होने पर कोई दो कार्डदेकर कितना ही कहे कि दूसरा फिर काम आ जायेगा—आप रख लीजिए परन्तु कभी भी आप उसे अपने पास नही रखते। मैं तो वास्तव मे इस थोडे से सहवास मे आपका अनन्य भक्त हो गया।

पूज्य वर्णीजी के दर्शनार्थ ईशरी आना और पुल पार करते हुए चोट लगना :

ग्रीष्म मे पूज्यपाद प्रात स्मरणीय क्षुल्लक श्री १०५ गणेशप्रसाद जी वर्णी महोदय ईशरी से हजारीबाग पधारे हुए थे। वहाँ सागर, जबलपुर, ललितपुर आदि स्थानो के प्रमुख सज्जन पूज्य वर्णी जी को लिवाने के लिए प्रार्थना करने आये। पूज्य श्री का विचार भी उधर जाने का हुआ—चूकि विहार प्रात की जलवायु अनुकूल न होने से स्वास्थ्य अत्यधिक क्षीण हो रहा था। सभवत बुन्देलखड की जलवायु अनुकूल होने से कुछ स्वास्थ्यलाभ हो सके, ऐसी भावना थी। अत जब उनके उधर जाने का कुछ-कुछ विचार हो रहा था तब ईसरी चलकर निर्णय करने का निश्चय हुआ, तदनुसार वे ईशरी आ गये। लेकिन वहाँ कलकत्ता, राची, कोडरमा, गया आदि नगरो से आए हुए प्रतिष्ठित सज्जना के हार्दिक स्नेह और भक्ति के कारण सागर, जबलपुर जाने का विचार स्थगित हो गया। जब इसकी सूचना जियागंज भगत जी के पास पहुची, तो आपका विचार श्री वर्णी जी के दर्शनार्थ ईसरी आने का हुआ। जियागज की धर्मप्राण समाज ने भगत जी से जियागज मे ही चातुर्मास करने का अत्यधिक आग्रह किया, परन्तु आपने प्रथम वर्णी जी के दर्शन करके उनकी आज्ञानुसार पुन जियागज आने का वचन दिया और ईसरी आये, मैं पहुचाने को साथ आया। दैवयोग से ईसरी स्टेशन पर पुल पर से उतरते हुए रात्रि

के अंधकार के कारण आपका पैर सीढी से फिसल गया और आप कई सीढियो पर लुढकते हुए नीचे गिर पडे—सिर फट गया, घुटने में काफी चोट आ गई फिर भी आप साहस करके उठे और बहते हुए सिर के खून को चादर से दबाते हुए आश्रम तक आए। आश्रम में खून बन्द करने के लिए तात्कालिक साधारण चिकित्सा की गयी, खून बन्द हो गया, किसी तरह रात्रि पूरी हुई। प्रातःकाल श्री वैद्यराज पं० लक्ष्मीचद जी ने उपयुक्त चिकित्सा प्रारम्भ कर दी, जिससे काफी लाभ प्रतीत हुआ। मेरे से कहा कि कोई चिंता नही है साधारण चोट है दो-चार दिन मे ठीक हो जायेगी। आप अष्टाह्निका के बाद प्रतिपदा को आना। मैं चतुर्मास के लिए जियागज चलूगा, पूज्य वर्णी जी ने आज्ञा दे दी है। अस्तु! मैं ठीक हालत देखकर वापिस जियागज आ गया।

गिरीडीह में उपचार के लिए जाना :

चोट यद्यपि पहिले साधारण सी ही प्रतीत हुई थी और ऊपर से ठीक होती मालूम देती थी लेकिन अन्दर ही अन्दर वह विषाक्त होती गई। तीसरे-चौथे दिनपुन मंदिर जी की सीढियो पर गिर पड़े और चोट लगने से अन्दर का मबाद निकलने लगा। एकाएक सारा सिर सूज गया, आखे वन्द हो गई, घुटने में गाठ पड गई, पैर हिलाना भी असभव हो गया। जब श्री पूज्य वर्णी जी महाराज ने यह अवस्था देखी तब तत्काल ही गिरीडीह ले जाकर किसी योग्य डाक्टर से चिकित्सा कराने की व्यवस्था कर दी, और श्री ब्र० सोहनलाल जी महाराज तथा गया वाले श्री चपालाल जी सेठी व भाई सज्जनकुमार जी भगत जी को गिरीडीह ले आये। आते ही श्री बाबू रामचन्द्र जी सेठी के सहयोग से डाक्टर को दिखाया और योग्य उपचार प्रारंभ हो गया।

जियागंज से मेरा लिवाने जाना व गिरीडीह में वैयावृत्य करना :

जब अष्टाह्निका पर्व समाप्त हूआ, तब समाज के विशेष आग्रह से भगत जी को लिवाने मैं पुन ईसरी आया। लेकिन वहां आते ही मालूम हुआ, कि भगत जी की चोट विषाक्त हो गई थी और वे इलाज के लिए गिरीडीह गये है। पूज्य श्री वर्णी जी के आदेशानुसार मैं गिरीडीह आया और जब एक्सरे लिवा कर भगत जी को बाबू राम-

चन्द्र जी व ब्र० सोहनलाल जी वापिस लाए, तब उनकी हालत देखकर मैं अवाक् और स्तब्ध रह गया। सारे सिर मे पट्टी बधी हुई है, पैर पत्थर हो गया है, शरीर निश्चेष्ट हो रहा है। भोजन दो दिन से बिलकुल नही किया, केवल थोडा जल लिया है। जैसे ही उन्होने मुझे देखा, असाधारण स्नेह से कहा—आप चिता न करो, मैं दो-चार दिन मे बिलकुल ठीक हो जाऊगा, और जियागज जरूर चलूगा। यद्यपि शरीर मे असह्य वेदना थी, परतु आप प्रसन्न चित्त थे व आत्मचिंतन मे तन्मय होकर उत्तमार्थ साधन मे लीन थे। मेरे पहुचते ही ब्र० जी ईसरी चले गये। मै भाई सज्जनकुमार जी के साथ वैयावृत्य मे लग गया।

मर्ज बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यो दवा की :

एक्सरे परीक्षा से डाक्टर ने बताया—चिंता जैसी कोई बात नही, जो चिकित्सा हो रही है दो-चार दिन मे उसी से आराम हो जायेगा। और सिर की चोट मे कुछ फायदा भी दिखने लगा। सूजन कम हो गई, घाव भर गया, आँखें भी खुलने लगी। परतु पैर मे जाघ के ऊपर जो गाठ पड गई थी, उसमे रच मात्र भी फर्क नही हुआ, पैर तो पत्थर से भी भारी और निश्चेष्ट होता गया। अपार शारीरिक वेदना होते हुए भी आप पूर्ण शात थे। किंचिन्मात्र विषाद की रेखा भी आपके तेजोमय मुखमडल पर कभी प्रतीत नही हुई। सयमसाधना और ध्यानाराधना मे प्रतिक्षण पूरी सावधानी वर्तने रहे। स्वय समयसारादि आर्ष ग्रथो का पाठ करना, दूसरो से सुनना, आत्मचिंतन करना, यही आपकी दिनचर्या थी। सामायिकादि क्रियाओ मे कभी विच्छेद न होने देते थे। भोजन सर्वथा बद था। थोडा सा फलो का रस और दूध ही बमुश्किल लेते थे। मैं भाई सज्जनकुमार जी के साथ समाज के प्रमुख बाबू रामचन्द्र जी सेठी के पूरे परिवार के सहयोग से वैयावृत्य मे पूर्ण तल्लीनता से लगा रहा, लेकिन उनकी स्थिति सुधरने के बजाय बिगडती ही गयी। श्री बाबू बालचन्द जी कोछल, प० पन्नालाल जी धर्मालकार, प० सुखानद जी राची व बाबू जगत्प्रसाद जी डालमियानगर की धर्मपत्नी भी यथायोग्य परिचर्या मे सहयोग देते रहे। उदासीनाश्रम ईसरी के ब्रह्मचारी भी आते-जाते रहे। उपचार मे उचित तत्परता बर्तते हुए भी स्थिति सुधरी नही, उत्तरोत्तर बिगड़ती ही गयी।

वर्णी जी के प्रति भक्तिभाव :

पूज्य वर्णी जी को आप से विशेष धर्मानुराग था। प्रतिदिन आश्रम से किसी न किसी ब्रह्मचारी को भेजकर आपका स्वास्थ्यवृत्त मालूम करते रहे। और आप धर्मोत्पादक सदेश भेजते रहे। भगत जी की वर्णी जी मे अगाध भक्ति थी। आपके सदेश श्रवण मात्र से गद्-गद हो जाते और श्रद्धा से मस्तक झुका लेते, आत्माराधना मे दृढता से प्रयत्नशील हो जाते। एक दिन जब पूज्य वर्णी जी ने स्वहस्तलिखित पत्र द्वारा स्वास्थ्यलाभ की कामना करते हुए यथावसर समाधिमरण की साधना मे उपयोग स्थिर रखने का भाव प्रगट किया तो आप इतने आह्लादित हुए कि जो भी आपके पास आता, सभी से वर्णी जी की शुभकामना का उल्लेख करते और समाधिमरण मे पूरी साधना की दृढता प्रगट करते, मनसा वाचा कर्मणा वर्णी जी के चरणो मे अपूर्व भक्तिभाव प्रगट करते।

सांसारिक ममत्व से निवृत्ति :

आप की अवस्था प्रतिक्षण क्षीण हो रही थी। वेदना वृद्धि पर थी, ऐसी परिस्थिति मे आपके कुटुम्बियो को समाचार भेजने की अत्यावश्यकता थी। अत. बार-बार आपसे अपने कुटुम्बियो को बीमारी श्री वृद्धि का समाचार भिजवाने को पूछा गया। एक दिन ब्र० सोहन-लाल जी महाराज ने बहुत ही आग्रह किया कि आपके सुपुत्रो को आपके स्वास्थ्य का समाचार तार व पत्र द्वारा भिजवा देते हैं, परतु आपका कुटुम्बमोह सर्वथा नष्ट हो चुका था। आपने कभी भी तार देने की अनुमति नही दी। प्रत्युत मेरे द्वारा एक पत्र अपने पुत्रो को साधारण चोट आ जाने व चिंता न करने का डलवा दिया। लेकिन पूज्य श्री वर्णी जी ने पत्र और तार द्वारा आपके पुत्रो के पास समा-चार भिजवा दिए, जिसका उल्लेख आपसे नही किया गया। वास्तव में आप सांसारिकमोह से सर्वथा निर्लिप्त हो गये थे और केवलमात्र आत्मचिंतन में ही रत थे।

धार्मिक दृढ़ता :

जब ता० १७ को आपकी अवस्था भीषण देखी तब मैंने किसी प्रकार आपकी स्वीकारता लेकर डाक्टर को बुलवाया। डाक्टर ने चोट के अतिरिक्त डबल न्युमोनिया का आक्रमण बताया और इजे-

क्शन लेने की प्रेरणा की, परतु आप ने किसी भी प्रकार इजेक्शन लगवाना स्वीकार नही किया। मैने व बाबू बालचद जी कोछल तथा धर्मालकार जी ने भी बार-बार आग्रह किया, समझाया कि इजेक्शन लेने मे चारित्र भग नही होता, आप लगवा ले। यहाँ तक कहा कि पूज्य वर्णी जी ने भी आज्ञा दे दी है। यद्यपि वर्णी जी से इस विषय मे पूछा ही नही गया था। केवल इसी अभिप्राय से यह कहा था कि सभवत' वर्णी जी की आज्ञा मानकर आप इजेक्शन लगवाना स्वीकार कर ले। लेकिन आपने कतई मजूर नही किया वडी दृढता से यही उत्तर दिया कि वर्णी जी ही नही, चाहे जो भी कहे मैं किसी तरह भी अपने चारित्र में दोष न आने दूगा और वास्तव मे चारित्रशुद्धि के लिए आप अतिम क्षण तक सचेष्ट रहे।

अंतिम समय मुनिपद में शरीर त्याग :

आखिर वह कालरात्रि आ ही पहुची, ता० १८ को दिनभर तबियत यथावत् रही। आज केवल दो-तीन घूंट जल के अतिरिक्त और कुछ नही लिया। सदा पाठश्रवण स्वाध्याय आत्मचिंतन मे लगे रहे। औषधिमात्र कुछ नही ली। रात को वेदना अधिक बढ गई, शरीर सर्वथा शिथिल हो गया। आज शाम को ईसरी से वैद्यराज प० लक्ष्मीचन्द जी भी आ गये थे। रात भर वैद्य जी, मै व भाई सज्जन-कुमार जी पूरी तत्परता से वैयावृत्य मे लगे रहे। समयसारादि ग्रथो का पाठ सुनाते रहे। भगत जी स्वय भी यथाशक्ति पाठ करते रहे। शरीर निवृत्ति का पूर्ण निश्चय हो गया था। अत परिणाम किंचिन्मात्र भी शिथिल न होवे, इसके लिए हम सव पूर्ण सचेष्ट रहे। जब एक बार मैंने उनसे कहा कि आपने वर्षो समयसार का अध्ययन किया है अब अन्त समय मे उसे अनुभव मे उतार कर पूर्ण उत्तीर्णता का प्रयत्न कीजिए। आपने बडी दृढता से उत्तर दिया—पडित जी ! मैं शत प्रति-शत उत्तीर्णता प्राप्त करूगा। धन्य है, यह स्वात्मानुभवन की दृढता ? जब रात्रि को चार बजे उन्हे लघुशका निवृत्ति के लिए मैंने उठाया तो देखा शरीर से धाराप्रवाह पसीना निकल रहा है और शरीर बर्फसा ठडा हो रहा है। मैंने तत्काल वैद्य जी से कहा – अधिक से अधिक दो घटे और यह रहेगे। अत आप इन्हे सम्हालो, मैं और सवको बुला-कर समाधिमरण की व्यवस्था करू। तदनुसार वैद्य जी ने उन्हे

संभाला। मैंने तत्काल गिरीडीह के समस्त स्त्री-पुरुषों व पं० पन्ना-लाल जी धर्मालकार तथा प० सुखानंद जी को बुलाया, सभी पंद्रह मिनट मे इकट्ठे हो गये, सैकड़ो नर-नारी तत्काल आ गये। ईसरी से ब्रह्मचारियो को लेने के लिए उसी समय कार भेजी गई। यहां भगत जी को पूर्ण सचेतन अवस्था मे वस्त्रादि बाह्यपरिग्रहो का बुद्धि-पूर्वक त्याग कराया। आजन्म आहारादि का त्याग पुर सर समाधि-मरण धारण कराया, जो आपने स्वत हाथ जोडकर पचपरमेष्ठियो के स्मरण करते हुए णमोकार मत्रोच्चारण पूर्वक अगीकार किया और तल्लीनता से आत्मस्वरूप में स्थिर हो गये। सब लोग समाधिमरण, बारहभावना व णमोकार मत्र का उच्च स्वर से पाठ करने लगे और ठीक प्रात काल होने पर ऐसे शातिमय वातावरण मे ६-१० पर आप की तेज स्फुरण आत्मा मानवीय औदारिक शरीर का परित्याग कर स्वर्गीय दिव्य शरीर मे प्रवेश हेतु प्रस्थान कर गई। उपस्थित जन-समुदाय ने जयघोष से आकाश पूरित कर दिया। सभी इस भव्य समाधि के अवलोकन से धन्य-धन्य करने लगे। और भगत जी की आतमा को शाति लाभ की कामना करते हुए स्वय ऐसी समाधि प्राप्त की अभिलाषा करने लगे। वास्तव मे वह दृश्य अलौकिक ही था, शब्दो मे उसके वर्णन करने की शक्ति ही नही। काश ! सभी ऐसी भव्य समाधि प्राप्त कर आत्मानुभवी बनने के प्रयत्न मे सफल हो सकेंगे। धन्य यह समाधि, धन्य यह भगत जी, जिसने सत्यरूप मे उत्तमार्थ सिद्ध किया।

अंतिम संस्कार :

अब उनके शरीर की अत्येष्टि क्रिया यथोक्त रीति से सपन्न करने की आयोजना समाज के सहयोग से की जाने लगी। प्रचुर मात्रा मे घृत, कर्पूर, नारियल, गोले तथा चदनादि एकत्र किए गए। इतने मे जो मोटर ईसरी भेजी गयी थी वह वापिस आ गई। उसमें आश्रम-वासी समस्त त्यागीगण श्रीमान् ब्र० बाबू सुरेन्द्रनाथ जी अधिष्ठाता आश्रम, ब्र० सोहनलाल जी, मगलसेन जी, श्रद्धानद जी, प० सरदार-मल जी आदि तथा ब्रह्मचारिणी माता पतासोबाई जी, काशीबाई जी आदि पधारे। उन सबकी सम्मति और सहयोग से एकसुन्दर काष्ठ विमान निर्माण किया गया। जिसमें आपके शव को पद्मासन पधराया

गया। निर्जीव होते हुए भी आपकी मुखाकृति इस समय अत्यन्त मनोहारी, सौम्य ओजपूर्ण, भव्य तथा शातिमय प्रदीप्त हो रही थी। जो भी दर्शन करता, टकटकी लगाकर निहारता ही रहता। बडे साज-बाज और गाजेबाजे से जुलूस बनाकर शाति पाठ पढते हुए विमानारूढ शव को श्रीमान् सेठ रामचन्द्र जी सेठी की बगीची मे ले गए। वहा विधिवत् चदनादि से चिता निर्माण कर दाहसस्कार को प्रस्तुत हो ही रहे थे कि आपके दोनो सुपुत्र चि० लाला मुन्नालाल जी व सुमतिप्रसाद जी उच्च व तार स्वर से रुदन करते हुए आ पहुचे। आप लोगो को जो पत्र पूज्य वर्णी जी महाराज द्वारा दिलाया गया था, उसके पाते ही दोनो भाई जगाधरी से चलकर गिरीडीह आ गए थे। यद्यपि वे अपने पिता जी के जीवित अवस्था मे दर्शन नही कर पाए, तो भी यह उनका महान् सौभाग्य था कि सस्कार के ठीक अवसर पर वे पहुच गए और अपने हाथो अतिम सस्कार कर पितृऋण से उऋण हुए। यदि १५ मिनट की भी और देर हो जाती तो वे कदापि अपने पिता जी के शव का भी दर्शन नही कर पाते और जीवन भर सतापित रहते। यह एक असाधारण निमित्त और प्रबल सस्कार ही था कि वे दोनो दूरवर्ती पजाब से चलकर भी यथा समय पहुचकर कृतकृत्य हो गये। अस्तु ! इस समय के तीन भव्य चित्र लिए गए और यथाविधि शाति पाठ पढकर मत्रोच्चारण पूर्वक शव का अग्नि सस्कार किया गया। सबके देखते-देखते उनका यह पार्थिव शरीर यद्यपि अग्नि द्वारा भस्मसात् हो गया। परन्तु उनका यश शरीर चिरकाल तक सभी के हृदयो मे ज्ञान-वैराग्य का अद्भुत प्रकाश करता रहेगा। उनकी यह भव्य समाधि स्मृति समस्त ससार को सतत कल्याणकारी हो। यही शुभकामना है।

ओ शान्ति शान्ति शान्ति।

प्रत्यक्षदर्शी गुणानुरागी
बशीधर जैन न्यायतीर्थ शास्त्री
जतारा (टीकमगढ़ म० प्र०) वासी
वर्तमान—जियागज (मुर्शिदाबाद पश्चिम बग)

प्रातः स्मरणीय पू० १०५ क्षु० गणेशप्रसाद जी वर्णी (भगत जी के गुरु)

श्री ला० ज्योतिप्रसाद जी जैन (ज्येष्ठ भ्राता श्री भगत वर्णी जी)
स्वर्गवास . सन् १९४६

संतों की पत्रावलि :

पूज्य भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी के स्वर्गारोहण पर आगत संवेदना पत्रों की नकल

भाई मुन्नालाल जी जगाधरी

दर्शन विशुद्धि !

श्री भगत सुमेरचन्द्र जी का हमसे परिचय करीब २५ वर्ष से था, बराबर हमारे साथ रहते थे एव समयसारादि ग्रन्थो का अध्ययन करते रहते थे। आपका स्वभाव ओजपूर्ण था, निर्भीक सत्यवक्ता थे। कार्य करने मे निपुण थे। ऐसे निर्मल परिणामी विशिष्ट पुरुष थे कि जिसने निर्ग्रंथ पद मे उत्तमार्थ साधन कर मानव जनम को सफल किया, यह प्रशस्त एव अनुकरणीय है।

मिति श्रावण शुक्ल ५ — आपका शुभचितक ·
स० २०१४ — गणेशप्रसाद वर्णी, ईशरी

श्रीयुत भाई मुन्नालाल जी

योग्य धर्मस्नेह !

परच श्री ब्रह्मचारी सुमेरचद्र जी भगत जी के देहावसान के समाचार जाने। जो जन्मता है वह मरता है तथा प्रत्येक आत्मा स्वय, स्वय के लिए काम आता है इत्यादि वस्तु स्थिति जानकर उन्होने समाधिपूर्वक देह छोड़ा, इसका सतोष करके शोक को भुलाना। धर्म-ध्यान मे विशेषरूप से चित्त लगाना। परिवार को धर्मवृद्धि, बच्चो को आशीर्वाद। भगत जी समाधिपूर्वक गये है तो वे स्वय की सामर्थ्य पुरुषार्थ से शाति में होगे ही, आप सब धैर्य और शाति के साथ रहकर जीवन सफल करे।

जैन धर्मशाला देहरादून — शुभचितक ·
सहजानद वर्णी

श्रीयुत् भाई मुन्नालाल जी,

योग्य-धर्मस्नेह !

पूर्वी पजाब के जिला अम्बाले मे जगाधरी नगर है। यह नगर उत्तर प्रदेश और पजाब की सीमा पर है। इस नगर मे विशाल जैन मदिर, जैन पाठशाला आदि धार्मिक सस्थाये है। इस नगर मे जैन गृहस्थियो की बहुलता है। इस नगर मे बर्तनो के बडे-बड़े कारखानो प्राय जैन गृहस्थियो के है।

इसी जगाधरी नगर मे हमारे वीर भगत सुमेरचन्द जी का जन्म हुआ था। आप बचपन से निर्भीक थे। आपत्तियो, परिषहो और उपसर्गो का मुकाबला करना आप का सहज स्वभाव था। अग्रेज। राज्य मे आपने अहिसात्मक स्वतन्त्रता युद्ध मे भाग लिया। आप गाधी जी के अनुचर थे।

स्वतन्नता युद्धा मे सफलता के पश्चात् आपने आत्मा की घातक पाचो इन्द्रियो व मन तथा चार कषायो पर विजय प्राप्त करने के लिये युद्ध प्रारम्भ कर दिया। आपने गृह कार्यों से सम्ब्रन्ध व्युच्छेद कर दिया। आपने गृह कार्यों से सम्बन्ध व्युच्छेद कर दिया और अल्प परिग्रह रख कर आप अध्यात्मक सत श्री गणेशप्रसाद वर्णी जी की सगति मे रहने लगे। आपने इन्द्रियो पर विजय प्राप्त करने के लिये इन्द्रिय विषयो का बहुत कुछ त्याग कर दिया, अष्टम प्रतिमा के व्रत धारण कर लिये और निरन्तर समयसार आदि ग्रन्थो की स्वाध्याय मे रत रहने लगे। आपको जीव अजीव आदि सा तत्त्वो पर अटूट श्रद्धा थी स्व-पर का विवेक था। इस प्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान व एक देश चारित्र से युक्त थे। उनकी ससार, शरीर और भोगो मे रुचि घटती गयी और उदासीनता वढती गई। आप अधिकतर शाति निकेतन उदासीन आश्रम ईसरी मे रहकर धर्म साधना करते थे। आप स्वावलम्बी थे। ईसरी स्टेशन पर जाने के लिये जीने (पैडियो पर होकर जाना पडता है। वर्षा ऋतु थी आप का पैडी पर पग फिसल गया। आप गिर पडे बहुत चोट आई आप को गिरडीह ले जाया गया दो-तीन ब्रह्मचारी आपके साथ गिरडीह गये। सैप्टिक हो गया एक दिन, रात्रि को आप को भान हुआ कि आयु अत्यल्प रह गई है। आपने अपने साथियो को उठाया चारो प्रकार के आहार का सर्वदा के लिये त्याग

कर दिया, सर्व वस्त्र उतार कर नग्न मुद्रा धारण कर ली और ध्यानस्थ हो गये। इस प्रकार सल्लेखना सहित इस नश्वर शरीर का त्याग किया। ऐसे भगतजी को मै श्रद्धाञ्जली अर्पित करता हु और भावना करता हू कि इस प्रकार सल्लेखनापूर्वक मेरा भी मरण होवे। आपने अपने जीव काल मे अनेको व्यक्तियो को उपदेश देकर उनकी सल्लेखना कराई। आपके दो पुत्र श्री मुन्नालाल व सुमतप्रसाद है जो धर्मात्मा है।

शुभचितक

प० रतनचद, सहारनपुर

श्रीयुत लाला मुन्नालाल जी नरेशचद्र जी

दर्शन विशुद्धि

आज मैंने जैनमित्र मे ब्र० श्री भगत सुमेरचद्र जी वर्णी का स्वर्गवास गिरीड़ी मे हुआ पढा, पढकर मोह-जन्य शोक हुआ। ऐसे महापुरुष सरलस्वभावी, निस्पृही सच्चे आदर्श विद्वान् त्यागी का वियोग किस सहृदय व्यक्ति को दुखकर न होगा ? किन्तु सिवाय सतो॰ के कोई इलाज ही नही। ससार की दशा क्षणभगुर है यही दिन सबको आना है मोही प्राणी जितनी दूसरो की चिन्ता करता है उतनी निज की नही। ससार मे कौन किसका, सभी प्राणी अपनी-अपनी आयु लेकर आते है। पूर्वोपार्जित सातोदय से सुख और पापोदय से दुख भोगते और आयु समाप्त होने पर अन्य पर्याय को प्रयाण कर जाते है आत्मा का स्वभाव निरुपद्रव, ज्ञाता, दृष्टा है। इसकी श्रद्धा ज्ञान और रमणता मोक्षका मार्ग है अन्य सब द्रव्य और भाव मुझसे भिन्न है। आप विद्वान है, ससार की असारता के ज्ञाता है, अनुभवी है। दोहा—'रे मन सोचे कौन को, करे सो कौन विचार। गये सो आवनहार नही रहे सो जावनहार ॥' जो गये सो आने वाले नही और जो है वह जाने वाले है। अब सोच किस बात का अत सतोष धारण कर। पिताजी ने जिस प्रकार अपने मानव जनम को सफल बनाया आप लोग भी उसे लक्ष्य बनाये, यही शाति का मार्ग है। हम आपके शोक में संवेदना प्रगट करते है। स्वर्गस्थ आत्मा अनन्त शांति को प्राप्त हो ऐसी भावना करते है।

दि० २७-७-५७

आपका शुभचिन्तक

ब्र० छोटेलाल, इन्दौर

श्रीमान् भाई मुन्नालाल जी नरेशचद्र जी जगाधरी

अचानक श्री श्रद्धेय भगत ब्र० सुमेरचद्र जी वर्णी के स्वर्गवास के समाचारो से सस्था के प्रत्येक व्यक्ति को अत्यन्त शोक हुआ— दिवगत आत्मा अवश्य ही विशेष सुख मे हैं परन्तु दुख है कि हम उनके सुखद ससर्ग से वचित हो गये। सिवाय धैर्य के ससार मे और कुछ नही कर सकते। आशा है आप सतोष धारण कर ससार की अनित्यता का विचार करेंगे और पूज्य भगत सुमेरचद जी के पदचिह्नो का अवलोकन करेगे। वह सुखी हैं इसमे सन्देह नही। हम सब आपके साथ है।

स्याद्वाद महाविद्यालय
वाराणसी
१३-८-५७

वियोगसतप्त
पदमचद्र, सुपरिन्टेन्डेन्ट
तथा सस्था सम्बन्धी
समस्त परिवार

श्रीमान् लाला मुन्नालाल जी !

जयजिनेन्द्र !

कल जैन सन्देश से यह जानकर अत्यन्त खेद हुआ कि आपके पिता जी का गिरीडोह मे स्वर्गवास हो गया। भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी का हमारा सम्बन्ध दीर्घकाल से रहा। मुख्तयार श्री जुगल-किशोर जी की ओर से हम आपके इस इष्ट वियोगजन्य दुख मे सवेदना व्यक्त करते हुए श्री जिनेन्द्र से प्रार्थना करते है कि दिवगत आत्मा को परलोक मे सुख और शाति प्राप्त हो। उन्होंने अपना जीवन बहुत अच्छो तरह से व्यतीत किया है, हमारे योग्य सेवा लिखे।

भवदीय

दि० २७-७-५७

परमानन्द शास्त्री
वीर सेवा मदिर,
दरियागज दिल्ली

श्रीमती शकुन्तला देवी धर्मप० ला० मुन्नालाल जी जगाधरी !

दर्शन विशुद्धि

आगे हमको गिरीडीह से सूचना मिली है कि श्रीमान् भगत

सुमेरचन्द्र जी वर्णी का देहावसान हो गया है, जिसको मालूम करके हमको दुख हुआ। भगवान से प्रार्थना है कि दिवगत आत्मा को शाति प्रदान हो और आप सब तो धर्मात्मा और ज्ञानी है, आपको क्या शिक्षा दे, केवल इतना ही कहना काफी होगा कि आप लोगो को धैर्य रखना चाहिए। बाकी शुभ :

दिनाक २७-७-५७

ब्र० कृष्णाबाई
दि० जैन मुमुक्षु महिलाश्रम
श्री महावीरजी (राज०)

धर्मबन्धु लाला मुन्नालाल जी !

सादर जयजिनेन्द्र !

इधर जैन पत्रो से यह ज्ञातकर बडा दुख हुआ कि आपके पूज्य पिता जी तथा समाज के महान त्यागीवर्य उदार महानुभाव लगनशील धार्मिक रतन ब्र० सुमेरचन्द्र जी भगत वर्णी का ईशरी (गिरीडीह) मे अकस्मात् समाधिमरण पूर्वक स्वर्गवास हो गया है। भगतजी हमारी समाज के खरे और सच्चे त्यागी थे। उन्होने एक सम्पन्न एव पूरण परिवार को छोडकर आत्मसाधना के लिए त्याग मार्ग अपनाया, जिस पर वह वर्षो से अनवरत गतिशील थे। उनका अभाव आज सभी को खटक रहा है। भगवान श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है कि स्वर्गीय आत्मा को परम शाति का लाभ हो और कुटुम्बी जनो को धैर्य धारण करने की शक्ति प्राप्त हो। सस्था के प्रति उनका बहुत स्ने२ था।

शोकार्त

दिनाक ५-८-५७

रघुवीरसिंह जैन मत्री
भा० अ० र० जैन सोसायटी
दरियागज, दिल्ली

भाई मुन्नालाल जी जयजिनेन्द्र !

आज दिन आपके दो पत्र एक ईशरी और दूसरा जगाधरी का लिखा प्राप्त हुआ। पूज्य भगत जी के देहावसान के अचानक समाचारो को पढ़कर खेद हुआ। साथ ही हर्ष इस बात । हुआ

कि जिस श्रेय को प्राप्त करने का सकल्प उन्होंने किया था, उस परम पद की प्राप्ति वह कर गये। जिस वाह्य-आभ्यन्तर परमपद की प्राप्ति महान् दुर्लभ है उस परम दिगम्वर दशा को प्राप्त करके इस नश्वर शरीर को छोडकर सद्गति को प्राप्त किया। उनकी उस दिगम्वर अवस्था को हम वदना करते है। आपका दुख भी सुखरूप मे बदल जाना चाहिए, यह शरीर नश्वर है और इससे अगर परमपद की प्राप्ति हो जावे तो और क्या चाहिए। यह जगाधरी का ही नही उत्तर भारत का परम सौभाग्य है कि जो भगत जी ने प्रारम्भ दशा मे बनाया था, उसकी पूर्ती अतिम श्वास तक की। ऐसे नररतन भारत मे विरले ही होने है जो समाधिसहित दिगम्बर व्रत को ग्रहण करके अपने नाम को अमर कर गये। धन्य है वह महान् आत्मा, हमारी शत-शत वदन।

आपका कृपाकाक्षी
जिनेश्वरप्रसाद जैन
फर्म—उदयराम जिनेश्वरदास जैन,
सहारनपुर

दि० २३-७-५७

विविध स्थानों से समागत

शोक प्रस्ताव

श्रीमान् माननीय पूज्य वर्णी सुमेरचद्र जी का असमय मे मरण सुनकर सहारनपुर के जैन पचायती मदिर की शास्त्र सभा को दु ख हुआ, लेकिन ससार का नियम है कि सयोगी पदार्थ का वियोग अवश्य होता है। पूज्य वर्णी जी तो जीवन भर चारित्र पालते रहे और अन्त मे मुनि लिग धारण किया इससे उन्होने अपने जीवन को और ऊचा किया, नर जनम को सार्थक बनाया। यह सभा उन दिवगत आत्मा के निकट व सम्बन्धियो के प्रति हार्दिक सवेदना प्रकट करती है और पूज्य वर्णी जी के प्रति सादर श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती है—

विनीत
जम्बूप्रसाद जैन
मत्री दि० जैन समाज,
सहारनपुर

दिनाङ्क २८-७-५७

श्री मुन्नालाल जैन, जगाधरी
जन्म १४-४-१९१५

श्रीमती शकुन्तला देवी जैन (धर्मपत्नी श्री मुन्नालाल जैन, जगाधरी)
जन्म १६-४-१६१७ · स्वर्गवास १६-१-१६७४

Jiyaganj (Bengal)   Date 25 July 1957
16/50 Recd: 8/10 A.M.

Mulraj Jotiprasad Jagadhri

Shoked at death news pujya Shree Sumerchand barni we Express Condolence.

Jiaganj Samaj

मान्यवर   सादर-जयजिनेन्द्र

आज ता० २१-७-५७ को दि० जैन मदिर जगाधरी में हुई यह जैनसभा जगाधरी के आध्यात्मिक सत भगत सुमेरचद्र जी वर्णी के ता० १९-७-५७ के सुबह ६ १० पर गिरीडीह मे समाधिपूर्वक मरण हो जाने के समाचार तार द्वारा जानकर हार्दिक शोक प्रकट करती है तथा दिवंगत आत्मा को शान्ति लाभ की प्रार्थना करती हुई उनके त्यक्त परिवार के प्रति सम्बेदना प्रकट करती है ।

२१-७-५७   व्यथित हृदय' समस्त दि० जैन समाज,
जगाधरी

मान्यवर !

उक्त महानुभाव द्वारा यहाँ के और अनेक देशों के प्राणियो का जो हित हुआ वह अवर्णनीय है । ऐसे योगी के असमय मे उठ जाने से दु ख का होना स्वाभाविक है पर आप वस्तुस्थिति के ज्ञाता हैं धैर्य के सिवाय और कोई चारा नही । आशा है आप लोग भी उनके पद-चिह्नो पर चल कर उन्ही का अनुकरण कर समाज हितैषी बनेंगे ।

भवदीय
फूलचद जैन बजाज
मत्री जैन समाज, जगाधरी

Nakur Dated 27 July, at 12-40 Recd. 9-20

Munna Lal Sumatpershad Jagadhri. heartly Saradhanjli Bhagat Sumerchand Warni Narwan.

Jain Panchayat Nakur.

प्रिय भाई मुन्नालाल नरेशचन्द्र जी

सादर-जयजिनेन्द्र !

पत्र मिला पूज्य भगत जी का स्वर्गवास पढकर वहुत दु ख हुआ जीव के आयु कर्म पर किसी का वल नही है आप दोनो भाई विद्वान हैं धर्म मे लगन है इसलिए इस महान शोक को धैर्य के साथ-साथ पूरा करेंगे ऐसे महान आत्मा से यही शिक्षा ले कि उनके मार्ग पर चल कर अपना लाभ करे। यही हमारे प्रति उनकी सच्ची श्रद्धा है उनकी आत्मा की शान्ति लाभ की हम कामना क्या करे। उन्होने अपने पुरुषार्थ से ससार के भव वन्धन को काट कर मुक्ति रानी की निकटता प्राप्त की है आप दोनो भाइयो से प्रेम अखण्ड रहे यही मेरी भावना है।

भवदीय

२४-७-५७ वेनीप्रसाद जैन, सहारनपुर

आदरणीय चाचा जी सादर बन्दे !

आपके हृदय विदारक पत्र से हृदय अत्यन्त द्रवित हुआ। राग-भाव तो वन्ध के कारण है। आयु कर्म पूरा होने पर यह नश्वर-शरीर त्यागमय है। पूज्य वर्णी जी का दिगम्बर वेष मे स्वर्गारोहण और समाधिमरण एक असाधारण घटना हे। ऐसी महान आत्मा को मन वचन काय से नमस्कार करता हुआ, अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पण कर।ा हू।

आपका

२५-७-५७ प्रेमचन्द्र जैन-पीपलमण्डी,
देहरादून

श्रीमान् सज्जनोत्तम मुन्नालाल जी को सुमतप्रसाद बलवन्तप्रसाद सर्राफ की सादर जयजिनेन्द्र वचना।

पूज्य माननीय वर्णी जी का असमय मे वियोग सुनकर दु ख हुआ। उन्होने अपने जीवन को सार्थक बनाया। अन्तिम समय मुनि लिंग धारण कर सद्गति प्राप्त को। समाधिमरण मे दत्तचित्त होकर शरी८ त्याग किया। हम भगवान से प्रार्थना करते है, उनके वियोग मे उनके कुटुम्बी जनो को धैर्य होवे तथा मृत आत्मा को शान्ति लाभ होवे

हम है आपके

२६-७-५७ सुमतप्रसाद बलवन्तप्रसाद जैन सर्राफ,
सहारनपुर

प्रियवर लाला मुन्नालाल जी जोग सहारनपुर से शिवप्रसाद की

सस्नेह जयजिनेन्द्र ।

आगे धर्म के प्रसाद से यहां सब कुशल है आपकी-सबकी कुशल भली चाहिये माननीय ब्रह्मचारी श्री सुमेरचद जी के असमय मे स्वर्ग सिधारने से शोक हुआ। परन्तु यह सुन करके अत समय मे उनको श्री मुनि महाराज वा क्षुल्लक जी वा अन्य साधर्मी जनो का अत्यन्त उत्तम समागम होकर मुनि अवस्था मे समाधिमरण हुआ इससे प्रसन्नता भी हुई आज श्रद्धाञ्जलि के समय आने का विचार किया था परन्तु यहाँ बुखार का बहुत जोर है, रास्ता भी खराब हो रहा है आ नही सका मैं शुद्ध हृदय से लिखता हू कि उनकी आत्मा को सद्‌गति प्राप्त हो आप सब मय बहू बच्चो के आनन्द से धर्म-ध्यानपूर्वक जोवन व्यतीत करो।

२८-७-५७ शिवप्रसाद सर्राफ, सहारनपुर

मान्यवर भाई मुन्नालाल जी

सस्नेह-जयजिनेन्द्र ।

कुछ दिनो हुए पत्रो मे पूज्य भगत जी का आकस्मिक स्वर्गवास पढकर अत्यन्त खेद हुआ। मुझ पर उनका धर्मवात्सल्य के कारण सहज स्नेह ही था। उन्होने ही मेरी असह्य पुत्र वियोग की व्यथा के समय धैर्य बधाया और आपसे भी परिचय कराया। मैं कहा तक उनका गुण-गान करूँ। ६ वर्ष पहिले जब वर्णी सघ ललितपुर था तो उनके साथ ही थूवौन चन्देरी आदि स्थानो की यात्रा सुख से की। वर्णी जी के पास जाने का कुछ विचार बन हो रहा था कि भगत जी के अभाव का स्मरण आते ही विचार छोड दिया। उनके अतिरिक्त और कौन मेरी वहा पर देखरेख और पूछ परतीत करता।

अच्छा, जो कर्म को मजूर है। उनकी भव्य और निर्मल आत्मा को अवश्य कल्याण की प्राप्ति है। हम तो केवल अपनी भावना पूजा-रूप श्रद्धाञ्जलि ही अर्पण करते है।

बच्चो को प्यार योग्य सेवा से सूचित करे।

२० सी वेयर्ड रोड,
नई दिल्ली १८-८-५७

भवदीय :
सुखमालचद्र
Superintendent Directorate of Technical Development Ministry of Defence (CGDP)

श्रीयुत् मुन्नालाल जी, सादर जयवीर वचना जी ।

अत्र कुशल तत्रास्तु । अपरच यह जानकर अत्यन्त दुख हुआ कि पूज्य भगत सुमेरचन्द्र जी अव इस ससार मे नही है । श्री स्वर्गीय आत्मा को सद्गति तथा कुटुम्बी जनो को धैर्य प्राप्त हो यही जिनेन्द्र देव से प्रार्थना है ।

पूज्य भगत जी के दर्शनो का एव उपदेशामृतपान करने का पूर्ण सौभाग्य मुझे यहाँ कई वार प्राप्त हुआ । आप यहाँ श्री नेमिनाथ दि० जैन मन्दिर के उद्यान मे स्थापित अ० भा० दि० जैन व्रती विद्यालय मे रहते थे, आपने यहाँ चातुर्मास भी किया था । आपका उपदेश वडा ही हृदयग्राही और सरल भापा मे होता था । जब भी मैं आपके दर्शनो अथवा उपदेशामृत पान करने जाता था तो वडे ही स्नेह से अपने पास बुलाकर विठलाते थे । आपका लौकिक ज्ञान भी काफी वढा-चढा था । आध्यात्मिकता की प्रगति इसी वात से सिद्ध है कि आपने कई रचनाये की है । अपनी इन्द्रियो पर विजय प्राप्त कर क्रमश ब्रह्मचारी, क्षुल्लक तक होने की सोचते थे । आप कई भाषाओ के जानकार थे । आपके कारण भोपाल मे बडा आनन्द रहा । जब ब्रह्मचर्याश्रम (व्रती विद्यालय) मे त्यागीगण एक साथ सामायिक मे बैठते थे तो श्री नेमिनाथ दि० जैनमन्दिर का प्रागण तपोभूमि के सदृश आध्यात्मिक रस से भरपूर हो जाता था । वह सुन्दर दृश्य आज भी आँखो के सामने आ जाता है तो मैं आनन्दित हो उठता हूँ । प्रात उपाकाल का दृश्य भी वडा सुहावना मालूम होता था । आप कहा करते थे—मैने भारतवर्ष मे वहुत से स्थान देखे तथा रहा भी, परन्तु ध्यानादि आध्यात्मिक प्रगति के लिए यह स्थान जितना शान्त और मनोरम है और कही नही । मैं कहता, पूज्यश्री यह भोपाल के लिए प्रकृति की अनुपम देन है । मध्य प्रदेश की राजधानी बनने का सौभाग्य भी भोपाल को इसी कारण प्राप्त हुआ है । मैं कभी-कभी वैसे ही भगत जी से पूछ बैठता आपको गृह-कुटुम्बियो की याद नही आती, वह मुस्करा देते और बडे प्रेम से कहते, भाई ससार का कारण ही मोह है इस पर जितना कन्ट्रोल किया जावे उतना ही आत्मा प्रगति पथ पर अग्रसर होता है । उनके यह शब्द आज भी मुझे प्रेरणा प्रदान करते है, धन्य है वह महान् आत्मा ।

दि० २६-८-५७ विनीत

गुलाबचन्द्र पाड्या, भोपाल (म० प्र०)

प्रियवर भाई मुन्नालाल जी,

जयजिनेन्द्र ।

आपका पत्र आया समाचार पढकर दुख हुआ। अभी तो उनकी इतनी अवस्था नही हुई थी। शाति इसी बात की थी कि वे सब चीजो का त्याग कर मुनि अवस्था को पहुचे, जिससे उनकी आत्मा को कितनी उच्च स्थिति मिली होगी व अपने सबके लिए कैसा ऊँचा उदाहरण रक्खा कि घर को कैसी अच्छी स्थिति मे छोडा और हमेशा आगे ही बढते रहे। ईश से यही प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शाति मिले, वे उच्च अवस्था को प्राप्त हो।

आपका·
बाबू बलवन्तराय जैन
इजीनियर एन्ड कन्ट्रैक्टर (बम्बई)

दिनाक २५-७-५७

श्रीयुत मुन्नालाल जी तथा सौ० शकुन्तला देवी,

जयजिनेन्द्रदेव की !

पत्र आपका आया, पढकर अति शोक हुआ। श्री भगत जी की देवगति पढकर एकदम धक्का सा लगा, क्योकि कोई बीमारी भी आगे नही सुनी। उन्होने अपनी आत्मा को साध कर इस पूज्यपदवी पर पहुचाया। और इतनी अच्छी समाधिमरण पूर्वक देवगति हुई, यह एक बहुत सौभाग्य की बात है। अब हम सबकी यही भावना से प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शाति मिले, और मोक्ष गति हो। आप लोगो के तो शिर पर से अवश्य छत्रछाया उठ गयी। इसमे सन्देह नही, कितना भी दूर रहे पर फिर भी बच्चो के मन मे तो छत्रछाया की सी ही भावना रहती है। आशा है आप लोग भी इस धक्के को शाति-पूर्वक सहन करेगे। इसके आगे किसी का चारा नही है। घर मे सबको हमारी ओर से सहानुभूति पूर्वक सात्वना देना। बाकी सब प्रकार कुशल है, सबको जयजिनेन्द्र बच्चो को आशीर्वाद ! पत्र देना।

२७-७-५७

आपकी शुभचिन्तिका बहिन,
लाजवन्ती—बम्बई

संवेदना पत्र

आरभ परिग्रह तें विरत, विषय वासनातीत ।
ज्ञानध्यान तप मे मगन, नमहु सुगुरु कर प्रीत ।।

उपस्थित महानुभाव ! जिस सन्त के निधन हो जाने से हमारे हृदयो मे जो क्षोभ हुआ, उसका अनुभव तो हम सवो को जो-जो उनके सम्पर्क मे रहा होगा, अवश्य हो ही रहा है। वह लाला सुमेरचन्द्र जी जिस समय गृहस्थ थे, सभव है इसे २५ वर्ष से भी ज्यादा हुए होगे । उनके साथ मुझे श्री सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर जी की यात्रार्थ जाने का अवसर मिला था । उस वक्त हमेशा निकट सम्पर्क मे रहकर मैंने देखा कि उनकी वृत्ति उन दिनो भी एक व्रती श्रावक से कम नही थी । शास्त्र अध्ययन का तो उनको बडा भारी व्यसन था, उससे वह कभी अघाते नही थे । वह जिनेन्द्र-पूजन सामायिक आदि करते तो विलकुल एकाग्रता से ही करते थे । हम लोगो को भी प्रिय वचनो द्वारा सत् कार्यों मे प्रवृत्त होने की प्रेरणा किया करते थे और जव से उन्होने घरवार छोडकर सातवी-आठवी प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिए थे, तब तो फिर सोने मे सुगन्ध वाली वात हो गयी थी । इस अवस्था मे रहते हुए जव-जब उनका यहाॅ पदार्पण होता, मेरे पर विशेष अनुग्रह था । इसलिए हमेशा हितदेशना दिया करते और सन्मार्ग मे लगने की प्रेरणा किया करते थे । उनकी प्रेरणा से ही पूज्य वर्णी गणेशप्रसाद जी जैसे सन्तों का हमे यहाॅ जगाधरी मे समागम मिला और उनके उपदेशो के लाभ द्वारा हमारा बहुत कुछ हित हुआ । मुनिश्री १०८ नमिसागर जी के यहाँ पधारने पर आप फौरन आये, हमे मुनिचर्या का मार्ग बताया और पात्र दान की विधि से वाकिफ कराया । उन्होने अपने इस व्रती जीवन मे न मालूम किन-किन प्रान्तो मे भ्रमण किया और कितनी आत्माओ को कल्याण के मार्ग मे लगाकर श्रेयोभाजन वने । त्यागी व्रतीजनो की व्यवस्था का जब मौका आया, पूज्य वर्णी गणेशप्रसाद जी ने इन्हे ही सौपा । सागर भोपाल ईशरी आदि के उदासीन आश्रमो के आप अधिष्ठाता और व्यवस्थापक भी रहे । आपकी मात्र ऐसी निरीह वृत्ति थी कि सभी आपका लोहा मानते थे । विहार प्रान्त मे तो आपका जितना सम्मान था, आजकल के त्यागियो मे शायद ही किसी का हो । मेरा ख्याल है

कि वह करीब ४५ वर्ष की अवस्था मे ही घर-बार छोडकर त्यागियो की कोटि मे आये, तभी से अनेक प्रान्तो मे भ्रमण किया। बहुत से भाइयो को धार्मिक प्रेरणाये दी, पूज्य बडे वर्णी के साथ रहने से कई हजार मील पैदल भ्रमण किया। इन वर्षों में उन्होने आत्महित और परहित में अपने को लगाकर जो साधना की वह उन्ही से बनती थी। उनका त्याग और व्रत भी अनोखा था। रस-परित्याग हमेशा करते ही रहते थे, दो-चार रसो का छहो रसो मे से त्याग चलता ही रहता था। सहिष्णु बडे थे, रोगादि आने पर हरगिज घबड़ाते नही थे। दो-चार बार इस व्रती जीवन में उन्हे व्याधियो ने भी घेरा, पर वह विचलित नही हुए। ऐसे कर्मठ सन्त के उठ जाने से जो क्षति हुई उसकी पूर्ति होना तो कठिन है, इस बात का हमे दु ख है पर सतोष इस बात का है कि उन्होने अत समय समाधि लेकर अपनी युगो की साधना सफल की और अपने मनुष्य जन्म के ध्येय को सफल किया। अधिक क्या कहू वह आध्यात्मिक सत वास्तव मे सत ही थे। मैं उनके चरणो में अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ और यह भावना करता हूँ कि भगवान अत समय हमे भी ऐसा अवसर प्राप्त हो। साथ में यह भी प्रार्थना करता हूँ कि जिन्हे ऐसे पुण्य पुरुष की सतान होने का गौरव प्राप्त है, उन्हे चाहिए कि वह इनके पदचिह्नो पर चलकर अपने जीवन को पवित्र बनावे। भगवान से विनती है दिवगत आत्मा को शान्ति दे। शोक सतप्त आत्माओ को सहिष्णु बनावे। "ॐ शान्ति"

विनीत

दिनाङ्क २८-७-५७ जम्बूप्रसाद राजकुमार जैन,
जगाधरी

तीन भुवन मैं सार, बीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुं त्रियोग सम्हारिके ॥

उपस्थित महानुभावो, माताओ तथा बहिनो! आज हम सब जिस सन्त के पुनीत चरणो मे अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने को एकत्रित हुए है उनके विषय मे यद्यपि पूर्व वक्ताओ ने बहुत कुछ प्रकाश डाला है। मैं चूकि अपने पूज्य पिता स्व० जुगमन्दरदास जी से उनका विशेष धर्मानुराग होने की वजह, उनके सम्पर्क मे बहुत रहा। मेरा

जहाँ तक खयाल है भगत सुमेरचद्र जी गृहस्थी में भी एक आदर्श गृहस्थ की भाँति रहते थे। अपने नित्य नैमित्तिक कर्म कर चुकने के बाद ही दुकान जाते थे। परन्तु जब वह गृहविरत उदासीन त्यागी की कोटि मे पहुचे, तब तो उनका ज्ञान-वैराग्य बहुत बढ गया था। उनकी सौम्य आकृति ही ऐसी शात और मोहक थी कि जो भी उनके सामने आ जाता था, प्रभावित हुए बिना नही रहता। और उनसे उसे ऐसी प्रेरणा मिलती जिससे वह हित-मित मार्ग मे लगता। वह इतने दृढ-प्रतिज्ञ थे कि वह अपने नियमो से तनिक भी विचलित नही होते थे। वे हमारे इस पजाब प्रान्त मे जैन समाज के एक अकेले ही ऐसे त्यागी हुए जिन्होने वर्तमान युग मे अपने व्यक्तित्व से हमारे प्रान्त में धार्मिक जागृति पैदा कराई। और हमारे इस जगाधरी नगर को प्रख्यात किया। उन्होने आत्म कल्याण के साथ-साथ सारे उत्तर प्रान्त के गौरव को बढाकर चार चाँद लगाये है। उन्होने दूसरे प्रान्तों भी पूज्य श्री १०५ प० गणेशप्रसाद जी वर्णी महाराज के साथ पैदल यात्रा द्वारा धर्म का प्रचार किया। जिससे सारी जैन समाज भली-भाति परिचित है। त्याग भी उनका बढा-चढा था, ध्यान अध्ययन की तो उन्हे टेव पड गई थी। हमारे स्व० पूज्य पिता जी और भगत जी समवयस्क ही होगे। पर भगत जी फिर भी पूज्य पिता जी को ही बडा मानते थे, ऐसा उनमे वात्सल्य था। भगत जी हर समय उन्हे ऊँचा चढने की प्रेरणा किया करते थे। आप ही उन्हे घरेलू झझटो और उद्योग-धन्धो से निवृत्ति कराने मे सहायक रहे। आपने अपने जीवन के इन (१३) तेरह वर्षों मे गृह विरत रहकर धर्मध्यान के साथ अनेक भव्यो को भी अपने सदुपदेशो द्वारा सन्मार्ग पर लगाया। जब कभी आप यहाँ पर पधार जाते हम लोगो मे एक नई चेतना आ जाती और हमे भी अपने हित के लिए कोई न कोई धार्मिक कार्य करने की प्रेरणा मिलती। पिछले वर्षों मे स्थानीय जैन युवक मडल मे जो उत्साह की लहर आई थी, वह उक्त भगत जी की ही देन थी, जिसके लिए मडल भी आभारी है। मै अपनी तरफ से और अपने जैन युवक मडल जगाधरी की तरफ से वदनीय भगत जी सुमेरचद जी वर्णी के पुनीत चरण कमलो मे अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि नत मस्तक हो बार-बार अर्पण करता हूँ। दिवगत आत्मा को शान्ति लाभ चाहता हूँ तथा हमारी हार्दिक भावना यह है कि जिनकी गौरवगाथा आज हम

गा रहे है, हमें भी भगवान् उनके पदचिह्नो पर चलने की साहस प्रदान करे। अलमति विस्तरेण।

विनीत :

२८-७-५७ पुरुषोत्तमदास, जगाधरी

श्री १०५ परमादरणीय जैन धर्मानुयायी परमभक्त श्री सुमेरचद्र जी की मृत्यु पर पंसारी समाज जगाधरी की ओर से सम्वेदन। पत्र तथा श्रद्धाञ्जलि अर्पित की जाती है।

श्री १०५ भगत सुमेरचद्र जी निजधर्मपरायण करुणा वरुणालय अपने स्मरणीय अर्हत देव को स्मरण करते हुए श्रावण कृष्ण ७ शुक्रवार वि० स० २०१४ तदनुसार ता० १९-७-५७ के दिन इस असार ससार को छोडकर परमधाम (निर्वाण पद) को चले गये।

श्री १०५ भगत जी 'अहिंसासत्यवचन सर्व भूतानुकम्पन। शमो दान यथाशक्ति गार्हस्थो धर्म उच्यते ॥' इन धर्मो का पूर्णरूप से पालन करते हुए भी और ऐश्वर्यादि से सम्पन्न होते हुए भी जैसे लिखा है (आनन्द पूर्ण घर सुपुत्र सुशीला धर्मपत्नी अपने मित्र ओर धन ब्रह्मचारी आज्ञाकारी नौकर और सत्सगति का होना उत्तम घर कहा गया है) यह सब उनके घर मे होने पर भी इस ससार को असार जानकर सवत १९९७ में गृह त्याग करके १६-१७ वर्ष नाना प्रकार के शारीरिक श्रम सहन कर यथा प्राप्त भोजनादि से निर्वाह करते हुए अनेक देश देशान्तरो मे और उनके पूज्य तीर्थ स्थानो मे भ्रमण करके लोगों को सदुपदेश देकर जीवादि रक्षा मे सलग्न रहकर अन्य प्राणियो को भी उसी मे लगाया।

पूज्य भगत जी के गार्हस्थ जीवन मे उनके साथ हमारा वाणिज्य व्यवहार और नगरवास चिरकाल तक रहा। वे हमारी जगाधरी की पसारियान् एशोशियेशन की वर्किङ्ग कमेटी के मेम्बर तो थे ही, इसके मत्री भी बहुत काल तक रहे और जब निर्वृति पथ के पथिक बनने का विचार कर लिया तो स० १९९० मे उन्होने मत्री पद त्यागा। वह सज्जन, परोपकारी, दयालु, सबके साथ सद्व्यवहार करने वाले पुरुष थे। हम इनके गुणो की प्रशसा करने मे असमर्थ है। हम उनके सद्गुणो से प्रभावित है, ऐसे सज्जन ससार में विरले ही

मिलते है। इनके गुणो का स्मरण करके हमारा हृदय गद्‌गद हो जाता है। वाणी वर्णन करने मे असमर्थ है। इसलिए हमारी मति मे यह आता है कि वे माता-पिता धन्य है, जिनके घर मे ऐसे पुत्र रत्न ने जन्म लिया है। वह देश भी धन्य है, जिस देश मे इन्होने परोपकार और धर्मोपदेश किया है। वह परिवार भी धन्य है, जिस घर को ऐसे धर्मात्मा ने भूषित किया है।

श्री १०५ भगत जी के अभाव से हमे जो क्षति हुई है वह पूर्ण होना असम्भव है। हम सब परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि भगवान् श्री भगत जी की आत्मा को उत्तमोत्तम गति देकर उनके शोकाकुल पुत्र पौत्रादि को शोक सहन करने की शक्ति प्रदान करे। और हम यह श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते है।

विनीत

दि० २८-७-५७ मत्री

पसारी समाज, जगाधरी

श्री माननीय भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी का असमय मे स्वर्गवास सुनकर यमुना नगर जैन समाज को महान् दु ख हुआ। यमुना नगर जैन समाज का तो बच्चा-बच्चा इन स्वर्गीय महान् आत्मा को सदैव ही सुमरन करता रहेगा। श्री दिगम्बर जैन मन्दिर जी यमुनानगर की स्थापना का पूर्ण योगदान उन्ही का है। श्री भगत जी के ही प्रभाव व प्रयत्न से ही श्री पन्नालाल जी, श्री सुन्दरलाल जी व उनकी माता जी से लाखो रुपये की जमीन श्री दिगम्बर जैन मन्दिर जी के लिए रजिस्ट्री कराकर महान् कार्य किया। जिससे भव्य आत्माओ को सदैव ही श्री वीतराग भगवान जी के दर्शनो का धर्म साधन का अवसर मिलता रहेगा। पूज्य भगत जी की सदैव कृपा दृष्टि व शुभाशीर्वाद रहा। ऐसे महान् सत के निधन हो जाने पर समाज के बच्चे-बच्चे को महान् दु ख है। वास्तव मे हमारा तो सहारा ही हमसे छीन लिया गया, हम उनके गुण वर्णन करने मे असमर्थ हैं। हमे जहाँ महान् दु ख है, किन्तु यह ज्ञात कर सन्तोष व हर्ष भी ो रहा है कि पूज्य भगतजी ने निर्ग्रन्थ पद से समाधिपूर्वक इस नश्वर शरीर को सचेत अवस्था मे पच परमेष्ठी का सुमिरन करते हुए शान्तिपूर्वक त्याग किया और

अपनी जीवन साधना मे सफल हुए। हम तो पूजा रूप अपना श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हुए शुभ कामना करते है कि दिवगत आत्मा को पूर्ण शान्ति मिले और हम उनके पदचिह्नो पर चलते हुए अपना कल्याण करे। औम शान्ति शान्ति ।

वियोग संतप्त
समस्त दिगम्बर जैन समाज यमुनानगर
प्रधान–मेहरचन्द्र जैन (ठेकेदार)

श्रद्धाञ्जलि

आज हम एक ऐसी आत्मा को श्रद्धाञ्जलि भेट करने के लिए जमा हुए है जो इसान के रूप मे देवता थे। आपके दिल मे ससारी जीवो का प्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ था। आप ६२ साल की उम्र मे ही इस महान् दुखमयी ससार मे हमें छोडकर हमेशा के लिए जुदा हो गये। किन्तु आपकी नेक राहें अन्य जीवो को उत्तम पथ प्रदर्शन कराती रहेंगी। आप सिर्फ धर्म-कर्म मे ही उत्तम स्थान पर नही, बल्कि पब्लिक जीवन मे भी आपने समस्त शहर जगाधरी के निवासियो के दिलो मे घर किया हुआ था। अपनी नेक खूबियो और उत्तम चरित्र की बजह से हर छोटा-बडा आपका गुणग्राही था। सन् १९३० मे जब काग्रेस का आन्दोलन जोरो पर था, उस वक्त आपके दिल मे देश भक्ति की लहर उमडी। आपने इस आन्दोलन मे हिस्सा लेकर जेल यात्रा की, आपके दिल मे देश की आजादी की तडफ थी, आप देश को आजाद कराना अपना कर्त्तव्य समझते थे। आप लोकल सस्थाओं मे भी अग्रसर थे, आप कन्या पाठशाला के प्रबन्धक थे और गऊशाला के भी मैनेजर थे। आइन्दा आने वाली नस्लें आपको हमेशा स्मरण करती रहेगी। आपकी तबियत मे ईश्वर भक्ति और वैराग की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी, इसीलिए सन १९४२ मे गृहस्थ जीवन को त्याग कर निजानन्द और परमात्मा मे लवलीन होने की ठानी और आप घर छोडकर तीर्थयात्रा के लिए रवाना हो गये। सन १९४६ मे आपके बडे भाई लाला ज्योतिप्रसाद जी का स्वर्गवास हो गया। इस मौके पर फिर जगाधरी निवासियो ने आपकी सगति से

अपना कल्याण किया। फिर सन १९४९ मे सागर से जगाधरी तक सात सौ मील की पैदल यात्रा करके, आप श्री १०५ क्षुल्लक गुरू गणेशप्रसाद जी वर्णी व क्षुल्लक श्री मनोहरलाल जो वर्णी, क्षुल्लक श्री पूर्णसागर जो वर्णी, क्षुल्लक श्री चिदानन्द जी महाराज व आठ-दस त्यागी व विद्वानो के साथ जगाधरी आये और हमारे शहर वालो को उनकी अमृत वाणी का पान कराया, फिर आप १९५५ मे जगाधरी तशरीफ लाये। इस वक्त आपकी सेहत जिगर की खराबी को वजह से बहुत गिरी हुई थी। मेरे साथ उनको दिली प्रेम था। मैंने कहा–भगत जी आपका इस बार शरोर बहुत दुर्बल हो गया, तो आप हँस कर कहने लगे–पडित जी आप जानते ही है कि ये शरीर तो नाशवान है, ये बनता विगड़ता रहता है। आत्मा तो हमेशा अमर है। कितना ऊँचा आदर्श था, उन्होने चन्द वाक्यो मे ही मेरे मन को शात कर दिया। हजारो खुशियाँ थी, स्वर्गधाम जाने वाले आदरणीय भगत जी की तमाम खूबियो को कहा जाये तो एक किताब वन जाये। आज इतने आदमी इकट्ठे हुए तो क्यो हुए मौत तो हजारो को हर रोज अपने आचल मे ले लेती है कोई इतना वडा सम्मान नही दिया जाता उनकी महान खूवियो को जानते हुए हर प्राणी को श्रद्धाञ्जलि भेट करने की इच्छा पैदा हुई और श्री जैन मन्दिर जी पहुचकर अपनी श्रद्धा के फूल चढाये। आपने श्री शिखर जो गिरीडोह मे १९ जौलाई सन १९५९ को सुवह ७ बज कर १० मिनट पर इस नाशवान शरीर को त्याग दिया और अपने पीछे हजारो प्राणियो को रो।ा-बिलखता छोडकर परमधाम को सिधार गये। हर इसान की जबान पर बाकी रह गया।

कहाँ हो भगत जी कहलाने वाले भव्य जीवो को सदा उपदेश सुनाने वाले। आखिर मे मै भगवान सर्व शक्तिमान से प्रार्थना करता हुआ श्री पूज्य भगत जी के चरणो मे श्रद्धाञ्जलि भेट करता हुआ नतमस्तक प्रणाम करता हूँ और मेरी प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शाति मिले।

भेटकर्ता
प० खुशदिलप्रसाद शर्मा हकीम
जगाधरी

—असामयिक वज्रपात—

श्रीमान वीतरागपूर्ण भगत सुमेरचद्र जी वर्णी की असामयिक मृत्यु पर जो कि मिती श्रावण कृष्ण ७ भृगुवार सं० २०१४ तारीख १९-७-५७ के अरुणोदय मे हुई व जिन्होने इस संसार को वास्तव मे असार समझकर अपनी साधना के बल पर अंत समय अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। इनकी आयु लगभग ६५ की होगी। यह बाल अवस्था से ही बडे धार्मिक विचारक, शास्त्रों के अध्ययन मनन प्रेमी, इष्टमित्रों से प्रेमभाव, सब पर दया करने वाले, परोपकारी, सत्सगी थे। गृहस्थ अवस्था मे भी इनका व्यवहार वड़ा पवित्र रहा। इनके युगल पुत्र श्रीमान् लाला मुन्नालाल जी सुमतिप्रसाद जी भी अपने पिता के आज्ञाकारी रहे और उनकी सेवा मे तत्पर रहते थे। मध्यमवय मे ही भगत जी ने गृहस्थी का सारा भार इन्हे सौपा और आप गृहविरत होकर सन्त समागम मे तीर्थस्थानो मे विचरने लगे। आप आत्मदर्शन की लालसा से सिद्धान्तपारगामी परमयोगी वर्णी प० गणेशप्रसाद जी न्यायाचार्य महाराज के शिष्य बने व अनेक साधनाये की व धर्मप्रचार कार्य मे जीवन बिताकर अन्त मे सन्यास ग्रहण कर दिव्यधाम को पधारे। आपके दिवगत होने का समाचार सुनकर कुटुम्बीजन व इष्टजनों मे दुःख का पारावार उमड उठा है। मेरी परमात्मा से प्रार्थना है कि दिवगत आत्मा अमरगति को प्राप्त होवे व सतप्तजन समुदाय को दुःख सहन करने का बल दे।

विनम्र :

२८-७-५७

ज्योतिपरत्न प० पृथ्वीनाथ शर्मा

जगाधरी

श्री १०५ भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी का श्रावण कृष्ण ७ स० २०१४ शुक्रवार ता० १९-७-५७ के दिन मृत्यु पर समवेदना व श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

यं शैव समुपासते शिव इति, ब्रह्मेति वेदान्तिनो।
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटव कर्तेति नैयायिका ॥
अर्हन्नित्यथजैनशासनरता कर्मेति मीमासका.।
सोऽय वो विदधातु वाञ्छितफल त्रैलोक्यनाथोहरिः ॥

श्री १०५ भगत जी की मृत्यु पर समवेदना व श्रद्धाञ्जलि प्रगट करता हुआ उनके गुणो का स्मरण भी अपना परम कर्तव्य समझता हूँ।

मैं अप्रैल सन् १६२८ मे तवदील होकर यहाँ आया था, तब से भगत जी के साथ घनिष्ठ सद्व्यवहार रहा। वह सज्जन परोपकारी स्वधर्म परायण और सत्यवादी थे। जब मैं दुबारा जगाधरी आया तब उक्त सन्त जो यहाँ से विहार कर गये थे। परन्तु कभी-कभी यात्रा करते हुए यहाँ आते थे तो उनके दर्शनो का लाभ होता रहता था। मैं उनके गुणो का वर्णन करने मे असमर्थ हूँ। उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर मेरे हृदय पर गहरा शोक छा गया। उनको स्मरण कर विह्वल हो गया। मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ व अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करता हूँ। आपको ईश्वर शुभगति देकर सतप्त परिवार को शोक सहन करने की शक्ति दे।

विनीत

२८-७-५७ गिरिधरदत्त शास्त्री

रिटायर्ड प्राध्यापक गवर्नमेन्ट हाई स्कूल, जगाधरी

आदरणीय लाला पन्नालाल जी नरेशचन्द्र जी,

जयजिनेन्द्र !

अपरच पूज्य भगत जी के स्वर्गारोहण के समाचार ज्ञात कर अत्यन्त वेदना हुई। पूज्य भगत जी यथार्थत सम्यक्त्वादि गुणोपेत धर्मनिष्ठ सत्यवादी राष्ट्र समाजसेवी थे।

पूज्य वर्णी गणेशप्रसाद जी के तो अनन्य भक्त थे।

मैं उनके धर्म वात्सल्य से बडा प्रभावित था, मेरे जीवन मे प्रेरणास्रोत मार्गदर्शक के रूप मे उनका सदैव उच्च स्थान रहेगा।

श्रद्धानवत

२९-७-५७ गुलाबचद जैन न्यायतीर्थ शास्त्री

डीमापुर (नागालैण्ड)

—पूज्य पिता के चरणों में पुत्रों की विनम्र श्रद्धांजलि—

स्वदोषशान्त्या विहितात्मशान्ति
शान्तेर्विधाता शरण गतानाम् ।
भूयाद् भवक्लेशभयोपशान्त्यै
शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्य ।।

उपस्थित धर्मनिष्ठ सज्जनवृन्द अतिथिगण, माताओ, बहिनो आज यहाँ जिस प्रसग मे हम सब एकत्रित हुए है वह तो हमे विदित ही है।

ससार मे अपने इष्ट का वियोग हो जाने पर ऐसा कौन व्यक्ति है जिसे दु ख का अनुभव न होता हो। हमारे प्रात स्मरणीय पूज्य पिता जी श्री सुमेरचद्र जी वर्णी का विगत १९।७।५७ को मु० गिरीडीह (हजारीबाग) मे प्रात काल ६', १०" पर समाधिपूर्वक मुनि अवस्था मे अनेक विद्वान और त्यागियो के सानिध्य मे स्वर्गवास हो गया। पहिले से तो हमे ऐसी खतरनाक अवस्था की स्वप्न मे भी खोज-खबर न थी इसके ५।७ दिन पहिले स्वय उन्ही के हाथ का लिखा पत्र हमे मिला था जिसमे उन्होने जियागज से वापिस ईसरी आते वक्त ईसरी स्टेशन के पुल पर से उतरते हुए पैर फिसल जाने से मामूली चोट शिर तथा एक टाग मे आ रई है ऐसा लिखा था और साथ-साथ यह भी लिखा था चिन्ता की कोई बात नही यह जल्दी ही ठीक हो जावेगी। चौमासा के लिये जियागज की धार्मिक समाज का अत्यन्त आग्रह होने से वहाँ ही चौमासा करने का वचन दे आया हू और आज-कल में वहाँ से लेने के लिये प० बशीधर जी न्यायतीर्थ आ रहे है अत मै श्रावण-वदी २ तक जियागज पहुच जाऊगा। अकस्मात् ता० १७-७-५७ की डाक मे ब्र० मगलसेन जी का गिरीडीह से लिखा पत्र मिला, जिसमे यह समाचार मिले कि वर्णी जी को उपचारार्थ ईसरी से गिरीडीह ले आये है। उसी दिन ४ बजे शाम को उन्ही का दिया तार मिला—वर्णी जी बीमार है आओ ! तब हमे विशेष चिन्ता हुयी और ऐसा प्रतीत हुआ कि बीमारी बढ गयी है और स्वास्थ्य-लाभ होने मे समय लगेगा—अत हम दोनों भाई उसी दिन रात के ३ बजे पजाब मेल से गिरीडीह के लिये रवाना हो गये और ता० १९-७-५७ की सुबह लगभग ९½ बजे गिरीडीह पहुँचे तो वहाँ ला० जगतप्रसाद डालमिया-

नगर वालो की धर्मपत्नी जो उक्त वर्णी जी की परिचर्या-को ही वहाँ आई हुयी थी यह हृदय विदारक सूचना मिली कि वर्णी जी का देहावसान तो सुवह ६' १०'' पर ही हो गया उनकी अन्त्येष्टी क्रिया सेठ रामचन्द्र जी सेठी के वगीचे मे होने वाली है—यह सुनते ही हमारे जो असह्य दु ख हुआ कहा नही जा सकता। हताश हो हम दोनो भाई रोते-पीटते वहाँ पहुंचे जाकर देखा उनका विमान, उनके अत समय की मुनि-अवस्था का जो गिरीडीह जैन समाज द्वारा वडी श्रद्धा और भक्ति से श्मशान यात्रा मे निकाला गया था वहाँ रक्खा था, दाह के लिये आयोजित चन्दन, घी, कपूर नारियल गोला वगैरह प्रचुर सामिग्री पडी थी—धर्मालङ्कार प० पन्नालाल जी काव्यतीर्थ प० वशीधर जी न्यायतीर्थ प० शिखरचद्र जी शास्त्री प० सुखानद जी वा ईशरी आश्रम के सभी त्यागीगण गण्यमानश्रावक, धर्मालिकार जी द्वारा आर्षपद्धति से कराये जाने वाले दाह सस्कार की आयोजना मे लगे हुए थे। हमने वहाँ जाकर पूज्य पिता जी के शव को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और यह विचारा कि यदि कुछ देर और यहाँ पहुँचने मे होती तो इससे भी वञ्चित रहना पडता। हमारा यह सौभाग्य है जो हमे इनकी अन्तिम सस्कार की वेला हाथ लग गई। गिरीडीह समाज ने उनके अन्तिम क्षण की मुनि अवस्था मे पद्मासन मुद्रा मे बैठा मृत देह को वडे आदर और भक्ति से विमान मे विराजमान कर वडे भारी जनसमुदाय मे प्रभावक ढग से निकाली थी जिसे वहाँ के मुख्य वाजारो से ले जाया गया था यह उनके धर्म वत्सलता और व्रतियो मे विशेष आदरभाव का एक प्रतीक था। विधिवत दाह क्रिया हो चुकने पर पूज्य पिताजी के वियोग से व्यथित हम लोगो को रोते-पीटते देख प० पन्नालाल जी धर्मालिकार, सेठ रामचन्द्र जी सेठी, आश्रम के त्यागियो ने हमे सात्वना दी और वस्तुस्थिति को समझाया। इसके वाद उसी दिन शाम को हम ईशरी चले गये वहाँ पूज्य वर्णी सरीखे उद्भट विद्वान त्यागी १०५ क्षुल्लक पूज्य गणेश प्रसाद जी जैसे वयोवृद्ध अध्यात्म योगी सत को भी उनके वियोग मे खिन्न देखा उन्होने कहा भैया हमने अपना एक चिर साथी खो दिया जिसका दु ख है, पर सतोष इस लिए है कि हमारे उस मित्र ने अन्तिम परीक्षा मे सौ मे से सौ नम्बरो से उत्तीर्णता प्राप्त की। पूज्य वर्णी जी ने अपने उद्गारों को प्रगट करते हुए यह भी कहा कि भैया वह तो हमारे प्राणाधार थे। हमारा एक कर्मठ वैयावृत्ति

करने वाला त्यागी पुरुष चला गया। गया जी- वाली ब्रह्मचारिणी विदुषी माता पतासीवाई तो उन्हे श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुई ऐसी गद्‌गद् हुईं कि उनका कठ रुक गया। पूज्य बड़े वर्णी जी कहने लगे, भैया हमारे साथी भगत जी ने मनुष्योचित कर्तव्यो मे इस युग मे जो आत्मसुधार का सर्वोत्कृष्ट मार्ग है, उसे अपनाया और फिर उसी मे दृढ रहकर ध्यान पूर्वक इस नश्वर शरीर को छोड़ा। मैने सुना है वीसपथी कोठी के मैनेजर कोछल जी वकील ने गिरीडीह जाकर उन्हे मेरी दुहाई देते हुए इजेक्शन लेने की प्रेरणा की, पर वे इस पर भी नही डिगे और अपने आत्मबल पर निर्भर रहकर यही जवाब दिया, मेरी चिन्ता मुझे है, किसी के हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नही। इस नश्वर शरीर को यदि रहना है तो इस उपचार के बिना ही टिका रहेगा और जाना है तो 'मणि मत्र तत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई।' धन्य है उनके परिणामो की स्थिरता। उन्हे सावधानी भी अन्तिम क्षण तक पूरी रही और पच परमगुरू के स्मरण करते-करते प्राण पखेरू निकले, हमे इस पर गौरव है। हमारी तो यही भावना है कि भगवन् हमारा समाधिमरण भी ऐसा ही हो। पास मे बैठे पन्ना-लाल जी, वशीधर जी वगैरह मे भी यह कहा, भैया हमारा भी समा-धिमरण ऐसा ही कराना। पूज्य वर्णी जी से हमे वास्तविक सात्वना मिली। वस्तुस्थिति समझ मे आ जाने पर मनुष्य के हृदय से गलत धारणा निकल ही जाती है।

पूज्य पिता जी की विरक्त परिणति जब हम छोटे-छोटे थे तभी से थी, परन्तु स० १९९० मे जब उन्हे दिल्ली वाले बाबा किशनलाल जी का समागम हुआ, तव से उन्होने नियमित रूप से पाक्षिक श्रावक के व्रत, ८ मूलगुणो का पालन सप्त व्यसनो का निरतिचार त्याग, स्थूल रीति से पचाणुव्रत पालन आदि यम नियम ले लिए थे। अक्सर वह कहा करते थे कि भोग और उपभोग कम कर देने से जिसकी धन की तृष्णा कम हो गयी है, ऐसा व्यक्ति आजीविका के लिए वह काम हर-गिज नही करता, जिससे दूसरे को कष्ट पहुचे। उसका खान-पान भी बहुत सात्विक और शुद्ध होता है। मैने बडे-बडे हकीम और डाक्टरो से सुना है कि यदि किसी को साधारण खाँसी भी हो जाती है तो सबसे पहिले वे वैद्य डाक्टर उसे मादक पदार्थ मास जमीकद न खाने का परहेज कराते है। प्रसंगवश ऐसे वैद्य डाक्टरो से मैंने कहा, हमारे जैन

धर्म मे तो यावज्जीव मनुष्य को त्याग ही बतलाया है तो वह यह जानकर बडे प्रभावित होते थे।

यद्यपि इसके पूर्व भी उन्होने चार वार श्री सम्मेदशिखर जी, एक वार जैनवद्री मूलवद्री, दो वार गिरनारादि क्षेत्रो की वदना कर ली थी पर उन्हे इसमे भी सतोष नही हुवा वे तीर्थ यात्रा को फिर भी इस ध्येय से निकल पडे कि अपने आत्मसुधार के लिये किसी गुण की तलाश की जाय जिसके पाद्मूल मे रहकर शेष जीवन बिता कर अन्य हित मे लगाया जा सके। यह वात आज से १५-१६ वर्ष पहिले की होगी भाग्य से ईशरी मे ही उन्हे पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी का समागम मिल गया तब उन्होने उन्ही के साथ रहकर अपनी आत्मसाधना करने का दृढ सकल्प कर लिया। वह वहा से जगाधरी आये दुकान और घर सम्बन्धी झझटो को सुल्टाय। सारा कार्यभार हम लोगो पर छोड फिर पूज्य वर्णी जा से ही क्रम-क्रम से प्रतिमा रूप व्रत लेते गये और आठवी प्रतिमा तक का पालन करने लगे, वह अधिकतर तो उन्ही के साथ रहते उन्ही की प्रेरणा से वर्णी जी वगैरह जैसे सत भी यहाॅ पधारे मुनिविहार भी इस प्रात मे हुआ। हमे भी जागृति मिली यहाॅ या अन्यत्र जहाॅ भी हमे फिर उनका समागम हुआ कौटुम्बिक चर्चा उन्होने कभी नही छेडी धार्मिक उपदेशो द्वारा ही हमे सम्बोधा—कोई सासारिक प्रपच उनकी जबान पर नही आया। यदि कारण वश हम भाइयो मे कोई मतभेद हुवा तो उन्होने प्रत्यक्ष वा परोक्ष मे इस तरह मिटाया कि हमे फिर खोजने का अवसर ही नही रहा हमारे परिणाम भी सरल हो गये। हम आज उनके जीवन की ऐसी अनेक बातो को विचार कर यही सोचते हैं कि यदि वह कुछ समय और टिके होते तो न जाने हमारा कितना हित होता पर यद्भावि न तद्भावि भावि चेन्नतदन्यथा' यानी जो होनी होती है वह होकर ही रहती है उसे कोई अन्यथा कर नही सकता। यही सोच सिवाय सब्र के और कोई चारा यहाॅ नही दिखता—

हमारे इस इष्टवियोगज दु ख मे जिन-जिन त्यागीजनो, विद्वानो और श्रीमानो ने वाहर से सम्वेदना सूचक तार, पत्र भेजे है और जो हमारे निकट सम्बन्धी इस मौके पर हमे सात्वना देने यहाॅ पधारे है तथा यहाँ की जैन समाज के अत्यन्त आभारी हैं जिन्होने हमें ढाढस

बंधाकर हमारे दुख को हल्का किया हम पूज्य गुरू श्री पं० गणेश-प्रसाद जी वर्णी का महान उपकार तो भूल ही नही सकते जिनके प्रसाद से पूज्य पिता जी अपने ध्येय मे सफल हुए। हम पूज्य ब्रह्मचारीगण और प० पन्नालाल जी वगैरह विद्वानों का भी आभार मानते है, जिन्होंने उनके अत समय उनकी वैय्यावृत्ति की, मारणान्तकी सल्लेखना मे उन्हे समयसारादि के पाठ सुना सुनाकर सावधान किया।

अन्त मे हम उनके पुनीत चरण कमलो में अपनी श्रद्धा के फूल चढाते हुए बार-बार नत मस्तक होते है और कामना करते है कि हमें भी वह कूवत मिले जिससे हम भी उनके पद चिह्नो पर चलकर अपना सुधार कर सकें।

विनम्र सेवक :

दिनाङ्क २८-७-५७

मुन्नालाल सुमतिप्रसाद
जगाधरी

वर्णी पत्रावली

[श्री भगत ब्र० सुमेरचद्र जी वर्णी, पूज्यवर क्षुल्लक श्री १०५ गणेशप्रसाद जी वर्णी के सत्समागम मे रहे है। भगत जी जहाँ वर्णी जी के प्रीतिपात्र थे, वहाँ उनके प्रति विनम्र श्रद्धालु भी थे। भगत जी का अन्तिम जीवन तो वर्णी जी के साथ ईशरी अथवा उसके आस-पास ही व्यतीत हुआ था। पूज्य वर्णी जी ने यथा समय भगत जी को अनेक पत्र लिखे। वर्णी जी के पत्र साधारण पत्र नही। किन्तु धर्मशास्त्र के एक अङ्गरूप होते थे। उन सब पत्रो को सुरक्षित नही रखा जा सका, इसका खेद है। हाँ, कुछ पत्र ब्र० छोटेलाल जी के तत्त्वावधान मे स्व० सरसेठ हुकमचन्द्र जी इन्दौर के द्वारा प्रकाशित 'आध्यात्मिक पत्रावलि' द्वितीय भाग मे तथा वर्णी स्नातक परिषद् सागर के द्वारा प्रकाशित 'वर्णी अध्यात्म पत्रावली'-प्रथम भाग मे प्रकाशित हुए है। वहाँ से सकलित कर इस स्तम्भ मे प्रकाशित कर रहा हूँ।] —सपादक

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द जी,

योग्य दर्शनविशुद्धि !

आप तो निरन्तर स्वसमय-स्वसमय मे ही लगाते है और मनुष्य जन्म का यही कर्त्तव्य है। परोपकार की अपेक्षा स्वोपकार मे विशेषता है। परोपकार तो मिथ्यादृष्टि भी कर सकता है, वल्कि यो कहिए परोपकार मिथ्यादृष्टि से ही होता है, सम्यग्दृष्टि से परोपकार हो जावे यह वात अन्य है। परन्तु उसके आशय मे उपादेयता नही क्योकि यावत् औदयिक भाव है। उनका सम्यग्दृष्टि अभिप्राय से कर्ता नही, क्योकि वे भाव अनात्म है। इसका यह तात्पर्य है जो यह भाव अनात्म- जो मोहादि कर्म, उनके निमित्त से होते हैं अतएव अस्थाई है, उन्हे क्या सम्यग्ज्ञानी उपादेय समझता है ? नही समझता है। इसके लिखने का यह तात्पर्य है, जैसे सम्यग्दृष्टि के यह श्रद्धा है—जो मैं पर का उपकारी नही। इसी तरह उसकी यह भी दृढ श्रद्धा है, जो मैं पर का

उपकारी नही। निमित्त नैमित्तिक संबंध से उपकार हो जाना कुछ अन्तरंग श्रद्धान का बाधक नही। इसी प्रकार अनुपकारादि भी जानना। सत्य पथ के अनुकूल श्रद्धा ही मोक्ष मार्ग की आदि जननी है।

गणेशप्रसाद वर्णी।

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द जी,

योग्य दर्शनविशुद्धि!

पत्र आया समाचार जाना। आपके भाई साहब अच्छे है, यह भी आपके पुण्योदय की प्रभुता है। शाति का कारण स्वच्छ आत्मा मे है—स्थानों में नहीं। बाहर जाकर भी यदि अन्तरङ्ग मे मूर्च्छा है शाति नही मिलती। केवल उपयोग दूसरी जगह अन्य मनुष्यो के सपर्क मे परिवर्तित हो जाता है और वह उपयोग उस समय अन्य के सम्बन्ध की चर्चा से आकुलित ही रहता है। निराकुलता का अनुभव न घर मे है और न बाहर। यदि शाति की इच्छा है तब निरन्तर यह चेष्टा होना श्रेयस्करी है। जो यह हमारे रागादिक है यही ससार के कारण है, अन्य नही। निमित्त कारण मे दोषारोपण स्वप्न मे भी नही होना चाहिए। यहाँ का वा वहाँ का वातावरण एक सा है, चाहे नागनाथ कहो चाहे सर्पनाथ कहो।

गणेशप्रशाद वर्णी।

श्रीयुत महाशय सुमेरचद जी,

योग्य दर्शनविशुद्धि!

पत्र आया समाचार जाना। आपने लिखा शाति नही मिलती सो ठीक है, ससार मे शाति नही और अविरत अवस्था में शाति का मिलना असम्भव है। बाह्य परिग्रह हो को हम अशान्ति का कारण समझ रहे हैं। वास्तव मे अशान्ति का कारण अन्तङ्ग की मूर्छा है, जब तक उसका अभाव न होगा तब तक बाह्य वस्तुओ के समागम मे भी हमारी सुख-दुख की कल्पना होती रहेगी। जिस दिन वह शान्ति हो जावेगी बिना प्रयास के शान्ति का उदय स्वयमेव हो जायेगा। अत बलात्कार से कोई शान्ति चाहे तब होना असम्भव है। एक तो मूर्छा की अशान्ति एक उसके दूर करने की अशान्ति। अत जो उदय के

अनुकूल सामग्री मिली है उसी में समतापूर्वक काल को विताना श्रेयस्कर है।

ता० २३-११-३९ आपका शुभचिंतक
गणेशप्रसाद वर्णी।

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द जी,
योग्य दर्शनविशुद्धि।

पत्र आया समाचार जाने। क्या लिखे? कुछ अनुभव मे नही आता। वास्तव जो वस्तु है—वह मोह के अभाव मे होती है, जो कि वीतरागी के ज्ञान का विषय है। और जो लेखनी द्वारा लिखने मे आता है उसे उस तत्त्व का अनुभव नही। जैसे रसनेन्द्रिय द्वारा रस का ज्ञान आत्मा मे होता है, उसको रसना निरूपण करे यह मेरी बुद्धि मे नही आता। अत क्या लिखू, यावती इच्छा है आकुलता की जननी है। जो जानने और लिखने की इच्छा है यह भी आकुलता की माता है। यह क्या परमानन्द का प्रदर्शन करा सकती है? परन्तु जैसे महान् ग्रन्थो मे लिखा है कि—जीव का मूल-उद्देश्य सुख प्राप्ति है, उसका मूल कारण मोह-परिणामो की सन्तति का अभाव है। अत जहाँ तक वने इन रागादिक परिणामों के जाल से अपनी आत्मा को सुरक्षित रक्खो, इन पराधीनता के कार्यों से मुख मोडो, अपना तत्व अपने मे ही है। केवल उस ओर हो जाओ और इस 'पर' की ओर पीठ दो। ३६ पना जो आपसे है उसे छोडो और जग से जो ६३ पना है उसे छोड़ो, जगत की तरफ जो दृष्टि है वह आत्मा की ओर कर दो। इसी मे श्रेयो-मार्ग है। दोहा—"जगतै रहो छत्तीस (३६) हो, राम चरण छै तीन (६३) तुलसीदास पुकार कहे, है यही मतो प्रवीण।" जहाँ तक हो आत्म कैवल्य की भावना ही उपादेय रूप से भावना। द्वैतभावना ही जगत की जननी है। शारीरिक क्रिया न तो साधक है, और न बाधक है। इसी तरह मानसिक तथा वाचनिक जो व्यापार है उनकी भी यही गति है। इनके साथ जो कषाय की वृत्ति है यही जो कुछ है सो अनर्थ की जड है इनके पृथक् करने का उपाय एकत्व भावना है।

आपका:
गणेशप्रसाद वर्णी

श्रीमान् लाला सुमेरचंद जी,

योग्य दर्शनविशुद्धि !

आप स्वय विज्ञ है। कल्याण का मार्ग मेरी तो यह सम्मति है, अपने आत्मा को त्याग कर अन्यत्र नही। और जब तक अन्यत्र देखने की हमारी प्रकृति रहेगी, कल्याण का मार्ग तब तक मिलना दुर्लभ है। हम लोगो की अन्तरग भावना अति दुर्बल हो गई है। अपने बल को तो एक रूप से भूल ही गये है। पंचपरमेष्ठी का स्मरण—इसका अर्थ नही था जो हम एक माला फेर कर कृत्यकृत्य हो जावे, उसका यह प्रयोजन था जो आत्मा ही के यह पाच प्रकार के परिणमन है। उसमे एक सिद्धपर्याय तो अन्तिम अवस्था है। यह वह अवस्था है जिसका फिर अत नही होता। ४ अवस्थायें औदारिक शरीर के सबंध से मनुष्य पर्याय में हो होती है, उसमे अरहन्त भगवान तो परम गुरु है जिनकी दिव्य ध्वनि से ससार के आतप शान्त होने का उपदेश जीवो को मिलता है, और ३ पद हैं सो साधक है। यह सर्व आत्मा की ही पर्याये है, उनके स्मरण से हमारी आत्मा मे यह ज्ञान होता है, जो यह योग्यता हमारी आत्मा मे है। हमे भी यही उपाय कर चरम अवस्था का पात्र होना चाहिए। लौकिक राज्य जब पुरुषार्थ से मिलता है तब मुक्ति साम्राज्य का लाभ अनायास हो जावे, यह नही। लोक कहावत है—"मागे मिले न भीख, बिन मागे मोती मिले।" अत अरहन्तादि परमेष्ठी के भिक्षा मागने से हम ससार बधन से नही छूट सकते। जिन उपायो को श्री गुरू ने दर्शाया है—उनके साधन से अवश्यमेव वह पद अनायास प्राप्त हो जावेगा। ज्ञान ही मोक्ष का हेतु है। यदि वह नही है तब बाह्य मे व्रत, नियम, शील, तप के होने पर भी अज्ञानी जीवो को मोक्ष का लाभ नही। अज्ञान ही बध का कारण है। उसके अभाव होने पर बाह्य मे व्रत, नियम, शील, तप आदि का अभाव भी है। तब भी ज्ञानी जीवो के मोक्ष का काभ होता है। अत निमित्त कारणो को उतना ही आदर देना योग्य है, जो अन्तरग मे बाधा न पहुचे। सर्वोत्तम तो यह उपाय सर्व से उत्कृष्ट और सरल है, जो निरतर अपनी दिनचर्या की प्रवृत्ति देखता रहे। जो आत्मा को अनुचित जान पड़े उसे त्यागे। और जो उचित जान पडे किन्तु परमार्थ से बाह्य हो, उसे भी त्यागे। सीढ़ी का उपयोग वही तक उपादेय है जब तक महल

मे नही पहुंचा है। भोजन का उपयोग क्षुधा निवृत्ति के अर्थ है एव ज्ञान का उपयोग रागादि निवृत्ति के अर्थ है। केवल अज्ञान निवृत्ति ही नही, अज्ञान निवृत्ति रूप तो वह स्वय है। इसी तरह वाह्य व्रत का उपयोग चारित्र के अर्थ हैं। यदि वह न हुवा तब जैसा व्रती वैसा अव्रती। मन्द कषाय व्रत का फल नही, वह तो मिथ्यात्व गुणस्थान मे भी हो जाता है। अत व्रत का फल वास्तव मे चारित्र है उसी से आत्मा मे पूर्ण शाति का लाभ होता है।

आपका शुभचिंतक
गणेशप्रसाद वर्णी

श्रीयुत शातिप्रकृति प्रिय लाला सुमेरचद जी,
योग्य दर्शनविशुद्धि।

मेरी बुद्धि मे तो प्राय हम ही लोग स्वकीय शाति के वाधक हैं। जितने भी पदार्थ ससार मे है वह एक भी शान्त स्वभाव के बाधक नही। वर्तन मे रक्खी हुई मदिरा अथवा डिव्वी मे रक्खा हुआ पान पुरुष मे विकृति का कारण नही, एव पर पदार्थ हमे वलात्कार से विकारी नही करता। हम स्वय अपने मिथ्या विकल्पो से उनमे इष्टा-निष्ट कल्पना कर सुखी और दुखी होते हैं। कोई भी पदार्थ न तो सुख देता और न दु ख देता है। जहाँ तक बने आभ्यन्तर परिणामो की विशुद्धितावृद्धि पर सदैव सावधान रहना चाहिए। गृहस्थो के सर्वथा अहित हो होता हो यह नियम नही। हित और अहित का सम्वन्ध सम्यक्त्व और मिथ्याभाव से है। जहाँ पर सम्यक्त्वभाव है वहाँ हित और जहाँ मिथ्याभाव है वहाँ पर अहित है। मिथ्याभाव तथा सम्यक्त्वभाव गृहस्थ व मुनि दोनो अवस्थाओ मे होता है, हाँ, साक्षान्मोक्षमार्ग का साधक दिगम्वरत्व जो है सो गृहस्थ के उस पद का लाभ परिग्रह के अभाव ही मे होता है। अत जहाँ तक हमारा पुरुषार्थ है, श्रद्धान को निर्मल बनाना चाहिए तथा विशेष विकल्पो को त्याग, त्यागमार्ग मे रत रहना चाहिए। पद के अनुसार शाति आती है। इस अवस्था मे वीतरागावस्था मे की शाति की श्रद्धा तो हो सकती है परन्तु उसका स्वाद नही आ सकता। भोजन वनाने से उसका स्वाद आ जावे यह सम्भव नही, रसास्वाद तो चखने से

आवेगा। आप जानते हैं—जो इस समय घर को त्याग कर मनुष्य कितने दम्भ करता है और वह अपने को प्राय जघन्य मार्ग मे ही ले जाता है। अत जब तक आभ्यन्तर कषाय न जावे, घर छोडने से कोई लाभ नही। कल्याण की प्राप्ति आतुरता से नही, निराकुलता से होती है। वैद्यराज जी से कह देना, ऐसी औषधि सेवन रोगियो को बताओ जो इस जन्मज्वर से छूटे, शरीर तो पर ही है।

आपका शुभचितक :
गणेशप्रसाद वर्णी

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द जी,

योग्य दर्शनविशुद्धि !

पत्र आया समाचार जाने। पत्रादिक पढने से क्या होता है, होने की प्रकृति तो आभ्यतर में है। जल मे जो लहर उठती है वह ठडी है, बालू मे वह बात नही। शाति का मार्ग मूर्छा के अभाव मे है। जहाँ पर शाति है वहाँ पर मूर्छा नही और जहाँ मूर्छा है वहाँ शाति नही। बाह्य पदार्थ मूर्छा मे निमित्त होते है। यह मूर्छा दो तरह की है। १ शुभोपयोगिनी, २ अशुभोपयोगिनी। उसमे पदार्थ भी २ तरह के निमित्त हैं। अर्हद्भक्ति आदि जो धर्म के अग है उनमे अर्हदादि निमित्त है और विषय कषायादिक हैं वे पाप के अग है। उनमे स्त्री, पुत्र, कलत्रादि निमित्त कारण है। अत इन बाह्य पदार्थो पर ही यदि अवलम्बित रहे तब कहाँ तक ठीक है समझ मे नही आता, ऐसा भी देखा गया है, जा बाह्य पदार्थ कुछ भी नही, यह जीव स्वयमेव कल्पना कर शुभाशुभ परिणामो का पात्र हो जाता है। इससे श्रीस्वामी कुदकुद म राज का मत है कि अध्यवसान भाव ही वध का जनक है। अध्यवसान मे बाह्यद्रव्य निमित्त पड़ते है। अत उनके त्याग का उपदेश है फिर भी बुद्धि मे नही आता। जैसे अशुभोपयोग के कारण बाह्य पुत्रादिक है, उनका त्याग कैसे करे। उन्हे छोड देवे, फिर क्या छोडने से त्याग हो गया ! तब यही कहना पडेगा, उनके द्वारा जो रागादिक परिणति होती थी वही त्यागना चाहिए। अथ च स्त्री आदि तो दृश्य पदार्थ है उन्हे छोड़ भी देगा परन्तु अर्हदादिक तो अतीन्द्रिय है, उन्हे कैसे छोड़े। क्या उन्हे ज्ञान मे न आने देवे, क्या करे ? कुछ

समझ मे नही आता। अन्ततोगत्वा यही निष्कर्ष निकलता है जो-जो ज्ञान मे भले ही आवे, रुचि रूप ज्ञेय न होना चाहिए। तो क्या अरुचि रूप इष्ट है ? अरुचि भी तो द्वेष का अनुमापक है। तब क्या करे ? जड बन जावे ? यह भी नही हो सकता। ज्ञान का स्वभाव ही स्व-पर प्रकाशक है। ज्ञेय उसमे आता ही रहेगा, तब यही बात आई जो स्व-पर प्रकाशक ही रहे। इससे अगाड़ी न जावे अर्थात् राग-द्वेष रूप न हो। यह भी समझ मे नही आता, जो ज्ञान रागादिक रूप होता है। क्योकि ज्ञान ज्ञेय का ज्ञाता है, ज्ञेय से तादात्म्य नही रखता, तब क्या करे ? यही करो कि अपनी परिणति रागादिक रूप न होने दो। क्या यह हमारे बस को बात है ? हम लाचार है, दुखी है, इस जाल से नही बच सकते। यह सब तुम्हारी कायरता और अज्ञानता ही का कटुक फल है जो रागादिको को दु खमय, दु ख के कारण जानकर भी उनसे पृथक् होने का प्रयत्न नही करते। अच्छा, अब आपसे हम पूछते है क्या रागादिक होने का तुम्हारे विषाद है ? तुम पर समझ रहे हो ? तब तुम्हे उनके दूर करने का प्रयास करना चाहिए। केवल यही भीतरी भाव है। जो हम तुच्छ न समझे जावें। इसी से ऊपरी बाते बना देते जो रागादिक अनिष्ट दु खदाई हैं, पर है। जिस दिन सम्यग्-ज्ञान के द्वारा इनके स्वरूप के ज्ञाता हो जाओगे फिर इनके निर्मूल होने मे अधिक बिलम्ब न लगेगा। रागादिक के होने मे तो अनेक बाह्य निमित्तो की प्रचुरता है और स्वाभाविक परिणति के उदय मे यह बाह्य सामग्री अकिंचित्कर है। अत स्वाधीन पथ को छोडकर पराधीनपथ मे आनद मानना, केवल तुम्हारी मूर्खता है। यावत् यह मूर्खता न त्यागोगे, कही भी चले जाना तुम्हारा कल्याण असभव है। क्या लिखे ? इन विकल्प जाला ने सन्निपात की तरह मूर्छा का उदय आत्मा मे स्थापित कर दिया है, जिससे चेत ही नही होता। यह सब बाते मोह के विभव की है। यदि भीतर से हम जान जावे तब सन्निपात ज्वर क्या ! काल ज्वर तक चला जा सकता है। अत बाह्य प्रक्रिया छोडकर आभ्यतर प्रक्रिया का अभ्यास करो। अनायास एक दिन निसग हो जावोगे। निसग तो पदार्थ है ही, परन्तु तुम्हारी जो बध मे एकत्व की कल्पना है, उसका अभाव हो जावेगा।

आपका शुभचितक
गणेशप्रसाद वर्णी।

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द जी,

दर्शन विशुद्धि !

अब तो ऐसी परिणति बनाओ जो हमारा और तुम्हारा विकल्प मिटे। यह भला, वह बुरा, यह वासना मिट जावे। यही वासना बंध की जान है। आज तक इन्ही पदार्थों मे ऐसी कल्पना करते-करते ससार ही के पात्र रहे। बहुत प्रयास किया तो इन बाह्य वस्तुओ को छोड़ दिया। किन्तु इनमे कोई तत्त्व न निकला। निकले कहाँ से ? वस्तु तो वस्तु मे है। पर मे कहाँ से आवे ? पर के त्याग से क्या ? क्योंकि यह तो स्वयं पृथक् है, उसका चतुष्टय स्वय पृथक् है। किन्तु विभावदशा मे जिसके साथ अपना चतुष्टय तद्रूप हो रहा है उस पर्याय का त्याग ही शुद्ध स्वचतुष्टय उत्पादक है। अत उसकी ओर दृष्टि-पात करो, लौकिक चर्चा को तिलाजलि दो। आजन्म से वही आलाप तो रहा, अब एक बार निज आलाप की तान लगाकर तानसेन हो जावो। अनायास सर्व दु ख की सत्ता का अभाव हो जावेगा। विशेष क्या लिखे ? आप अपने साथी को समझा देना। यदि अब द्वन्द्व मे न पडे तो बहुत ही अच्छा होगा। द्वन्द्व के फल की रक्षा के अर्थ फिर द्वन्द्व मे पडना कहाँ तक अच्छा होगा, सो समझ मे नही आता। इससे शाति नही मिलेगी। प्रत्युत बहुत अशाति मिलेगी। परन्तु अभी ज्ञान मे नही आती। धतूरे के नशे मे धतूरे का पत्ता भी पीला नजर आता है। आपका अनुरागी है समझा देना।

गणेशप्रसाद वर्णी।

श्रीमान् लाला सुमेरचन्द जी,

योग्य दर्शनविशुद्धि !

बन्धुवर ! कल्याणपथ निर्मल अभिप्राय से होता है। इस आत्मा ने अनादिकाल से अपनी सेवा नही की। केवल पर पदार्थों के सग्रह मे ही अपने प्रिय जीवन को भुला दिया। भगवान अर्हन्त का यह आदेश है जो कल्याण चाहते हो तो इन परपदार्थों मे जो आत्मीयता है वह छोडो। यद्यपि पर पदार्थ मिलकर अभेद रूप नही होते, किन्तु हमारी कल्पना मे वह अभेदरूप ही हो जाते है। अन्यथा उनके वियोग मे हमे क्लेश नही होना चाहिए। धन्य उन

जीवो को है जो इस आत्मीयता को अपने स्वरूप मे ही अवगत कर अनात्मीय पदार्थों से उपेक्षित होकर स्वात्मकल्याण के भागी होते है। आपका अभिप्राय यदि निर्मल है तब यह बाह्य पदार्थ कुछ भी बाधक नही, और न साधक है। साधक-बाधक तो अपनी हो परिणति है। ससार का मूल हम स्वय है। इसी प्रकार मोक्ष के भो आदि कारण हम ही है। और जो अतिरिक्त कल्पना है, मोहज-भावो की महिमा है। और जब उसका उदय रहेगा, मुक्ति-लक्ष्मी का साम्राज्य मिलना असभव है। उसकी कथा तो अजेय है। सो तो दूर रही, उसके द्वारा जो कर्म सग्रह रूप हो गये है, उनके अभाव बिना शुद्धस्वरूपात्मक मोक्ष प्राप्ति दुर्लभ है। अत जहाँ तक उद्यम की पराकाष्ठा इस पर्याय से हो सके। केवल एक मोह के कृश करने मे ही उसका उपयोग करिये। और जहाँ तक बने, पर-पदार्थ के समागम से बहिर्भूत रहने की चेष्टा करिये। यही अभ्यास एक दिन दृढतम होकर ससार के नाश का कारण होगा। विशेप क्या लिखू ? विशेषता तो विशेष ही मे है। आजकल का वातावरण अति दूपित है, इससे सुरक्षित रहना ही अच्छा है।

गणेशप्रसाद वर्णी।

श्रीयुत लाला सुमेरचद्र जी

योग्य दर्शनविशुद्धि !

मैं क्या उपदेश लिखू ? उपदेश और उपचेष्टा आपकी आत्मा स्वयम् है। जिसने अपनी आत्मपरिणति की मलिन भावो से तटस्थता धारण कर ली, वही ससार समुद्र के पार हो. पार हो गया। यह बुद्धि छोडो। पर से न कुछ होता है, न जाता है। आप ही से मोक्ष और आप ही से ससार है।

गणेशप्रसाद वर्णी।

श्रीयुत महाशय,

दर्शन विशुद्धि !

पत्र आया, समाचार जाने।

आपने जो आस्राव्य और आस्रावक के विषय से प्रश्न किया उसका उत्तर इस प्रकार है—

आत्मा और पुद्गल को छोडकर शेष ४ द्रव्य शुद्ध हैं। जीव और पुद्गल ही २ द्रव्य है, जिनमे विभावशक्ति है। और इन दोनो मे ही अनादि निमित्त-नैमित्तिक सबध द्वारा विकार्य्य और विकारक-भाव हुआ करते है। जिस काल मे मोहादिक कर्म के उदय मे रागादि रूप परिणमता है, उस काल मे स्वय विकार्य हो जाता है। और उसके रागादिक परिणामो का निमित्त पाकर पुद्गल मोहादि कर्मरूप परिणमता है। अतः उसका विकारक भी है। इसका यह आशय है, जीव के परिणाम को निमित्त पाकर पुद्गल ज्ञानावरणादिरूप होते है, और पुद्गल कर्म का निमित्त पाकर जीव स्वय रागादिरूप परिणम जाता है। अत आत्मा आस्रव होने योग्य भी है और आस्रव का करने वाला भी है। इसी प्रकार जब आत्मा मे रागादि नही होते है उस काल मे आत्मा स्वय सम्वार्य्य है और सवर का करने वाला भी है। अर्थात् आत्मा के रागादि निमित्त को पाकर जो पुद्गल ज्ञानावरणादिरूप होते थे। अब रागादिक के बिना स्वय तद्रूप नही होते, अत सवारक भी है।

अतः मेरी सम्मति तो यह है जो अनेक पुस्तको का अध्ययन न कर केवल स्वात्मविषयक ज्ञान की आवश्यकता है और केवल ज्ञान ही न हो किन्तु उसके अदर मोहादिभाव भी न हो। ज्ञान मात्र कल्याण मार्ग का साधक नही। किन्तु रागद्वेष की कलमषता से शून्य ज्ञान मोक्ष-मार्ग का साधन क्या, स्वय मोक्ष-मार्ग है। जो विष मारक है, वही विष शुद्ध होने से आयु का पोषक है। अत चलते, बैठते, सोते, जागते, खाते, पीते, यद्वा तद्वा अवस्था होते, जो मनुष्य अपनी प्रवृत्ति को कलकित नही करता वही जीव कल्याणमार्ग का पात्र है।

बाह्यपरिग्रह का होना अन्य बात है। और उसमे मूर्छा होना अन्य बात है। अत. बाह्य परिग्रह के छोड़ने की चेष्टा न करो, उसमे जो मूर्छा है. ससार की लतिका वही है, उसको निर्मूल करने का भगीरथ प्रयत्न करो, उसका निर्मूल होना अशक्य नही। अन्तरग की कायरता का अभाव करो, अनादि काल का जो मोहभावजन्य अज्ञान-भाव हो रहा है उसे पृथक् करने का प्रयत्न करो। अहर्निश इस चिन्ता मे लौकिक मनुष्य सलग्न रहते है कि हे प्रभो! हमारे कर्म कलक मिटा दो, आप बिना मेरा कोई नही, कहाँ जाऊँ? किससे कहूँ?

इत्यादि करुणात्मक वचनों द्वारा प्रभु को रिझावने का प्रयत्न करते है, प्रभु का आदेश है—यदि दु ख से मुक्त होने की चाह है, तब यह कायरता छोडो, और अपने स्वरूप का चिंतन करो। ज्ञाता दृष्टा रहो, बाह्य मत जाओ, यही कल्याण का पथ है।

तदुक्तम्—य परमात्मा स एवाह योऽह स परमस्तत ।
अहमेव मयोपास्य नान्य कश्चिदिति स्थिति ॥

जो आत्मा है वही मैं हूँ और मैं हूँ सो परमात्मा है। अत मैं अपने द्वारा ही उपास्य हूँ, अन्य कोई नही, ऐसी ही वस्तु मर्यादा है।

यह अत्युक्ति नही। जो आत्मा राग-द्वेष शून्य हो गया वह निरन्तर स्वरूप मे लीन रहता है तथा शुद्ध द्रव्य है। उपकार अपकार के भाव रागी जीवो मे ही होते है। अत परमात्मा की भक्ति का यही तात्पर्य है जो रागादि रहित होने की चेष्टा करो। भक्ति का अर्थ गुणानुराग, यद्यपि गुणो के विकास का बाधक है, फिर भी उसका स्मारक होने से निचली दशा मे होता है किन्तु सम्यग्ज्ञानी उसे अनुपादेय ही जानता है। अत आत्मा-बाधक कारणो मे अरुचि होना ही आत्मतत्व की साधक चेष्टा है। अत परमात्मा को ज्ञान मे लाकर यह भावो, यही तो हमारा निजरूप है। यह परमात्मा ओर मै इसका आराधक–इस भेद भावना का अन्त करो। आप ही तो परमात्मा है। आत्मा परमात्मा के अन्तर को स्पष्टतया जान अतर के कारण मेट दो अर्थात् अतर का कारण रागादिक ही तो है। उन्हे नैमित्तिक जान इसमे तन्मय न हो। यही उनके दूर होने का उपाय है, जहाँ तक अपनी शक्ति हो इन्ही रागादिक परिणामो के उपक्षीण का प्रयास करना। जब हमे यह निश्चय हो गया जो आत्मा पर से भिन्न है तब पर मे आत्मीयता की कल्पना क्या हमारी मूढता का परिचायक नही है? तथा जहाँ आत्मीयता है वहाँ राग होना अनिवार्य है। अत यदि हम अपने को सम्यक्ज्ञानी मानते हैं, तब हमारा भाव कदापि पर मे आत्मीयता का नही होना चाहिए। रागादिको का होना चारित्रमोह के उदय से होता है। हो, किन्तु अहबुद्धि के अभाव से अल्पकाल मे निराश्रित होने से स्वयमेव नष्ट हो जावेगा।

तीर्थकर प्रभु केवल सिद्ध भक्ति करते है। अत उनके द्वारा अतिथि-सविभागरूप दान होने की सभावना नही।

गणेशप्रसाद वर्णी

श्रीयुत लाला मुन्नालाल जी—जगाधरी,

योग्य दर्शनविशुद्धि !

पर्व के दिनो मे सानन्द शुभोपयोग का लाभ लिया होगा । यह कोई लाभ नही क्योकि यह लाभ स्थाई नही, स्थाई न होने का हेतु यह है जो यह लाभ परजन्य तथा परनिमित्तक तथा अनात्मीय भावो से हुवा है, उस परिणाम से जन्य जो कार्य होगा वह स्थिर नही हो सकता है । इससे प्रतीति होती है जो इसके आभ्यन्तर कोई गुप्त तथ्य छिपा है और उसी की सिद्धि के अर्थ यह आचार्यो का बच्चे को बतासे के अन्दर कटुक औषधि देने के तुल्य प्रयास है । जो भद्र आत्मा ! इस तत्व को जानते है वे ही इस पर्व के वास्तव तत्व को जानते है और वही इससे भाविनी अनुपम शान्ति के पात्र होते है । आपके पिता जी को अब इस तत्व का श्रीगणेश आरम्भ हो गया है जो कालान्तर मे स्थाई रूप धारण करेगा । आप लोग भी इस पर्व का फल क्रोधादि कषायो की निवृति जान उसके ही सद्भाव की चेष्टा करेगे । इसके आभ्यन्तर सर्व शान्ति और सुख है । आवश्यकता हमे इस बात की है जो निरन्तर निष्कपट पुरुषो की सङ्गति करे, ऐसे समागम से अपने को रक्षित रक्खे, जो स्वार्थ के प्रेमी है । श्री देवाधिदेव अरहत भगवान की उपासना हमे यह पाठ सिखाती है कि यदि कल्याण चाहते हो तब तो आत्मा आशिक रूप से शुद्ध हो उसी का समागम तुम्हारे कल्याण का कारण होगा ।

गणेशप्रसाद वर्णी

समाधिमरण

□ शिवलाल जी कृत

[श्री भगत ब्र० सुमेरचन्द्र जी को उर्दू का अच्छा अभ्यास था। प्रारम्भिक शिक्षा इनकी उर्दू मे ही हुई थी। श्री शिवलाल जी कृत समाधिमरण की तर्ज उर्दू के अनुरूप है तथा उर्दू के अनेक शब्द इसमे आये हैं। इसलिए भगत जी इसे पढते-पढते-भावविभोर हो जाते थे। अत यहाँ दिया जा रहा है।] —सपादक

परम पच परमेष्ठी ध्यान धर,
परम ब्रह्म का रूप आया नजर।
परम ब्रह्म करि मुझको आई परख,
हुवा उर मे सन्यास का अब हरख ॥१॥
लगन आत्माराम सो लग गई,
महा मोह निद्रा मेरी भग गई।
खुली दृष्टि चैतन्य चिद्रूप पर,
टिकी आन कर ब्रह्म के रूप पर ॥२॥
परम रस की अब तो गटागट मेरे,
शुद्धातम रहस की रटारट मेरे।
यहाँ आज रोने का क्या शोर है,
मेरे हर्ष आनन्द का जोर है ॥३॥
निरजन की कथनी सुनावो मुझे,
न कुछ और बतिया बताओ मुझे।
न रोओ मेरे पास इस वक्त मे,
कि तिष्ठा हूँ खुश हाल इस वक्त मे ॥४॥
जरा रोवने का [1]तअम्मुल करो,
नजर मिहरवानी की मुझ पर धरो।

---

१ सब्र।

उठो अब मेरे पास से सब कुटुम्ब,
तजो मोह मिथ्यात का सब विटम्ब ॥५॥
जरा आत्मा भाव उर आने दो,
परम ब्रह्म की लय मुझे ध्याने दो ।
मुझे ब्रह्म चर्चा से वर्ते हुलास,
करो और चर्चा न तुम मेरे पास ॥६॥
जो भावे तुम्हे सो न भावे मुझे,
न झगडा जगत का सुहावे मुझे ।
ये काया पे [1]पुटकी पडी मौत की,
[2]निदा आई शिवलोक के नाथ की ॥७॥
कि ये देह चिरकाल की है मुई ।
मेरी जिदगानी से जिदा हुई ॥
तजा हमने नफरत से ये मुर्दा आज ।
चलो यार अब चल करे मुक्ति राज्य ॥८॥
जिसम झोपड़ी को लगी आग जब,
हुई मेरे वैराग की जाग तब ।
सम्हाले मै रत्नत्रय अपने तीन,
लिया ब्रह्म अपने को मैं आप चीन ॥९॥
जिसे मौत है उसको है, मुझको क्या,
मुझे तो नही फिर भय मुझको क्या ।
मेरा नाम तो जीव है जीव हूँ,
चिरंजीव चिरकाल चिरजीव चिरजीव हूँ ॥१०॥
अखडित, अमडित, अरूपी अलख,
अदेही, अनेही, अजयी, अचख ।
परम ब्रह्मचर्य परम शाततम,
निरालोक लोकेश लौकाततम ॥११॥
परम ज्योति परमेश परमात्मा,
परम सिद्ध प्रसिद्ध शुद्धात्मा ।
चिदानद चैतन्य चिद्रूप हूँ,
निरजन निराकार शिव भूप हूँ ॥१२॥

---

१ पोटली । २ आवाज ।

चिता मे धरो इसको ले जाके तुम,
हुए तुमसे रुखसत क्षिमा लाके हम ।
कही जावो ये देह क्या इससे काम,
तजी इसकी रगवत[1] मुहब्बत तमाम ॥१३॥
मुए सग रह रह बहुत कुछ मुए,
मगर आज निर्गुण निरजन हुए ।
तिहूँ जगमे सन्यास की ये घडी,
मेरे हाथ आई ये अद्‌भुत जडी ॥१४॥
विषय विष से निर्विष हुवा आज मैं,
चलाचल से अविचल हुवा आज मैं ।
परम ब्रह्म लाहा लिया आज मै,
परम भाव अमृत पिया आज मै ॥१५॥
घटा आत्म उपयोग की आई झूम,
अजब[2] तुर्फ तुरिया वनी रग भूम ।
शुकल ध्यान टाली की टकोर है,
निजानद झाझन की झकोर है ॥१६॥
अजर हूँ अमर हूँ न मरता कभी,
चिदानद शाश्वत न डरता कभी ।
कि ससार के जीव मरते डरे,
परम पद का शिवकाल वदन करे ॥१७॥

---

१. इच्छा । २. अनुपम ।

श्री भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी की प्रिय प्रार्थना

* इष्ट प्रार्थना *

श्री जी सदा आपको मैं नमू । कुदेवो की श्रद्धा हिये से बमू ।।
धरू ध्यान मैं आत्माराम का । मुझे आसरा है तेरे नाम का ।।
तेरी चाह दिल और जिगर मे रहे । तेरी शान्ति मुद्रा नजर मे रहे ।।
तुम्हारे गुणो का करू जाप मैं । सहूँ फिर न कर्मो के आताप मैं ।।
मगर गुण अनन्ते गहूँ किस तरह । जवा एक से मैं कहूँ किस तरह ।।
गुणबाद तेरा मैं किस विधि कहूँ । तुम्हे काम धेनू या नव निधि कहूँ ।।
रसायन कहूँ या कि पारस कहूँ । कि चिन्तामणी या सुधारस कहूँ ।।
कल्पवृक्ष या बेल चित्रा कहूँ । बा या पुरुषा सर्व मित्रा कहूँ ।।
धनत्तर कहूँ या कि स्याना कहूँ । तिहुँ लोक मे तुम को माना कहूँ ।।
गलत है धनत्तर जो तुम को कहा । कहा और कवियो ने मैं भी कहा ।।
धनत्तर ने क्या काम बढ कर किया । कर्म रोग उस से न मेटा गया ।।
यह वह रोग है जिससे तडफा करे । तुम्हारे सिवा कौन अच्छा करे ।।
कहा पूरषा चीत्रा बेल क्या । कहा बेल और आपसे मेल क्या ।।
कल्प वृक्ष जड़ आप चेतन स्वरूप । कही जडका चेतनसे मिलता है रूप।।
सुधारस भी है इक स्वादिष्ट रस । वही उसकेरसिया जो रसना के बस।।
कहा शान्त रस से करे हमसरी । तेरी शान्त मुद्रा परम रस भरी ।।
है चिन्तामणी एक पत्थर की जात । नही ज्ञान विज्ञान की इस मे बात ।।
जो पारस ने लोहे को सोना किया । किया इसने सोना ही तो क्या किया।।
बनाया न लोहे को अपने समान । उसे किसतरह फिर मैंसमझू महान ।।
किया गौर हर चन्द हर तौर मैं । न यह 'वशफ पाया किसी और मैं ।।
शरण जो चरण की तुम्हारे गहे । बिला शक शुबा आपसा हो रहे ।।
रसायन से देखी न सन्तुष्टता । वि५य और कषायो की है पुष्टता ।।
न कुछ मेरे नजदीक नवनिधि बडी । चक्रवर्ती के दर पर है रहती खडी ।।
नहीं काम धेनू भी कहना वजा । भला आपसे उसको निस्वत है क्या ।।

पशु जातिकी वह तो एक गाय है। जगत निन्द तिर्यञ्च पर्याय है ॥
न मालुम क्यो ऐसी तमसील दी। यह जिन स्तुति है न कि दिल्लगी ॥
है साता करमका उदय जब तलक। नही होते हैं यह जुदे तब तलक ॥
अशुभ कर्म का जव उदय आवता। नही एक का भी पता पावता ॥
यह 'सबअगरज पुन्य के हैं विशेष। जहा पुन्य है वहा पर है कलेश ॥
नही पाप और पुन्यका तुममे लेश। कि हो सुध-बुध और निरजन महेश ॥
निराकार और तुम तदाकार भी। निराधार भक्तो के आधार भी ॥
यह प्रत्यक्ष निष्पक्ष कहना पडा। नही कोई दुनिया मे तुमसे वडा ॥
बडा होना तो एक वडी बात है। न तुम सा कोई बा करामात है ॥
तेरी वीतराग और विज्ञानता। की है सारे देवो मे प्रधानता ॥
कि यह गुण किसी देवमे भी नही। नही है नही है नही है नही ॥
सकल प्राणियो का तू मॉ बाप सा। हुआ है न होगा कोई आह सा ॥
तुम्ही प्रेम की सवको शिक्षा करो। तुम्ही तरिस्थावर की रक्षा करो ॥
तुम्हारे सिवाय किसमे यह ³दसतरस। किये शाति से तिहुलोक सो वस ॥
अहिंसा मई है तुम्हारा धर्म। सो निज धर्मका जिसने जाना मर्म ॥
कर्म उसके ज्यादा से ज्यादा अडे। तो वस सात भवजग मे धरने पडे ॥
यही जैन सिद्धान्त का सार है। किसी को नही इससे इन्कार है ॥
मगर बाज लोगोका है यह ख्याल। कि जव मोक्ष होता नही वर्तकाल ॥
तो फिर किसलिए शील सयम धरे। अनुवर्त पाले वा भूखो मरे ॥
यह है काल पचम न अब कुछ बने। जो हो काल लब्धि तो सवकुछ बने ॥
यहा से विदेहो मे लेकर जन्म। महा व्रत धारे लहे मोक्ष हम ॥
न शिवपुर पहुचते लगे देर कुछ। ये रास्ता है सोधा नही फेर कुछ ॥
जो श्रद्धा हो सर्वज्ञ के वाक की। मुजरिसम हो तस्वीर ईदराक की ॥
तिहू लोक त्रिकाल का ज्ञान हो। तगैयरतबद्गुल न एक आन हो ॥
वहा से यहा फिर न आना रहे। सदा एक सा वहा जमाना रहे ॥
जमाने की उलटन न पुलटन वहा। वहा की है जो बात वह यहा कहा ॥
जहा सुख अनन्ता सदा सुवास्ता। जो हैं तत्वज्ञानी उन्हे भासता ॥
हर एक को नहीं मिलती तेरी खबर। बिना स्यादवादी न आए नजर ॥
बजाहिर दिगम्बर तेरा भेश है। न बसतर न शस्तर का लवलेश है ॥
किया कर्म शत्रु का फिर कैसे घात। यह आश्चर्यकारी तुम्हारी है बात ॥
तुम्हारे गुणो की जो माला रटे। सभी पाप एकक्षण मे उनके कटे ॥
न कुछ तुमको करना न धरना पड़े। न मैदान मे आकर लड़ना पडे ॥

सफा दिलसे ले जो कोई तेरा नाम। सरे खुदबखुद उनके कारज तमाम ॥
परख शील की जब सीया के हुई। अगनकुन्ड किसने किया जलमई ॥
गिरा जब श्रीपाल सागर मझार। बताओ किया किसने सागर से पार ॥
वोह सिह और सूकर नवल बानरा। उतारे कहो कौन जप तप करा ॥
हरएक भक्तके दु खको भजन किया। कि अजनभी तुमने निरजन किया ॥
कथा और पुन्यात्माओ की क्या। उतारे जब ऐसे भी पापी महा ॥
नही ऊच और नीचका कुछ बिचार। कि आया शरणमे दिया उसकोतार ॥
मेरी बार अब देर किस वास्ते। लगाई है मैं टेर इस वास्ते ॥
तू निज रसका रसिया बना दे मुझे। पराधीनता से छुड़ा दे मुझे ॥
परम धाम बटिया बतादे मुझे। सो आनन्द कथनी रटा दे मुझे ॥
करू जबमैं इस तनसे अदमे रफर। रहे होश कायम मेरे सर बसर ॥
न मरने की तकलीफ महसूस हो। न जीनेपर दिल अपना मायूस हो ॥
न उलफत हो अपने जरोमाल से। नरगवत अय्यालऔर इत्तफालसे ॥
विषय और कषायो से विराग हो। विवेक और विराग से राग हो ॥
फकत आपका एक सहारा रहे। क्षमा भाव सबसे हमारा रहा ॥
न हो जबतलक आयुकर्म इखतताम। जबा से निकलता रहे तेरा नाम ॥
नमोकार हो या कि अरहन्त हो। तुम्हारे तसौवर मे देहात हो ॥
रहा अब तलक तो मैं बहर आत्मा। करो आतमा मेरी परमातमा ॥
नही और कुछ चाह मेरे जिनेश। मेरे दूर कर दीजिए राग द्वेष ॥
इन्हीसे है पुन्य और इन्हीसे है पाप। इन्हीसे है ससार भरमकी ताप ॥
इन्ही से है झगडे बखेडे तमाम। न हों ये रहू मैं सदा शादकाम ॥
कि जब पुन्य और पाप का नाश हो। तुम्हारे निकट 'राम' सा दास हो ॥
न पास अपने मालिकके जोदास हो। न वो दास विश्वास की रास हो ॥
समझदार यह अपना मुझे कीजिए। बस अब पास अपने बुलालीजिए ॥

१ गुण, २. यथार्थ, ३. शक्ति, ४ परमात्मस्वरूप, ५. परिवतन, ६. स्वच्छ, ७. मौत, ८. प्रेम, ९. बूढ़े, ११. ध्यान, १२. निराकुलता मे

बारहमासा वज्रदन्त चक्रवर्ति

(यती नैनसुखदास कृत)

सवैया—बन्दूं मैं जिनेन्द्र परमानन्द के कन्द,
जगवन्द विमलेदु जडता ताप हरनकूं।
इन्द्र धरणिन्द्र गोतमादिक गणेन्द्र,
जाहि सेव राव रक भवसागर तरन कूं।
निर्वन्ध निर्द्वन्द दीन बन्धु दयासिन्धु,
करें उपदेश परमार्थ करन कूं।
गावे नैनसुखदास बज्रदन्त बारहमास,
मेटो भगवन्त मेरे जन्म मरन कूं ॥१॥

दोहा—बज्रदन्त चक्रेश की, कथा सुनो मन लाय।
कर्म काट शिवपुर गये, बारह भावन भाय ॥२॥

बैठे बज्रदन्त आय आपनी सभा लगाय,
ताके पास बैठे राय बत्तीस हजार हैं।
इन्द्र कैसे भोगसार राणी छ्याणवे हजार,
पुत्त एक सहस्र महान् गुण गाए हैं॥
जाके पुण्य प्रचण्ड से नमे बलबड शत्रु,
हाथ जोड़ मान छोड सवे दरबार हैं।
ऐसो काल पाय माली लायो एक डाली,
तामे देखो अलि अम्बुज मरण भयकार हैं ॥३॥

अहो यह भोग महा पाप को सयोग देखो,
डाली मे कमल तामे भौरा प्राण हरे है।
नासिका के हेतु भयो भोग मे अचेत,
सारी रैन के कलाप मे विलाप इन करे हैं।
हम तो पाँचो ही के भोगी भये जोगी नाहिं,
विषय कषायन के जाल माहि मरे हैं।

जो न अब हित करूं जाने कौन गति परूं,
सुतन बुला के यों बच अनसरे हैं ॥४॥

अहो सुत जग रीति देख के हमारी नीति,
भई है उदास बनोबास अनुसरेंगे ।
राजभार सीस धरो परजा का हित करो,
हम कर्म शत्रुन की फौजन सू लरेंगे ॥
सुनत बचन तब कहत कुमार सब,
हम तो उगाल कू न अगीकार करेंगे ।
आप बुरो जान छोड़ो हम जग जाल छोड़ो,
तुमरे ही सग महाव्रत धरेंगे ॥५॥

चौपाई—सुत आसाढ आयो पावस काल, सिर पर गर्जत यम विकराल ।
लेहु राज सुख करहु विनीत, हम बन जाय बड़ेन की रीति ॥६

गीता छन्द—जांय तप के हेत बन को भोग तज सयम धरे ।
तज ग्रन्थ सब निर्ग्रन्थ हो ससार सागर से तरे ।
यही हमारे मन बसी तुम रहो धीरज धार के ।
कुल आपने की रीति चलो राजनीति विचार के ॥७॥

चौपाई—पिता राज तुम कीनो बौन, ताहि ग्रहण हम समरथ हौन ।
यह भौरा भौगन को व्यथा, प्रगट करत कर कगन यथा ॥८॥

गीता छन्द—यथा करका कागना सन्मुख प्रगट न जस परे ।
त्योही पिता भौरा निरखि भवभोग से मन थरहरे ॥
तुमने तो बन के बास ही को सुख अङ्गीकृत किया ।
तुमरी समझ सोई समझ हमारी हमे नृप पद क्यों दिया ॥९

चौपाई—श्रावण पुत्त कठिन बनवास, जल थल सीत पवन के आस ।
जो नहिं पले साधु आचार, तो मुनि भेष लजावे सार ॥१०

छन्द—लाजे श्री मुनीभेष तातै देह का साधन करो ।
सम्यक्त्व युत व्रतपच मे तुम देशव्रत मन मे धरा ॥
हिंसा असत चोरी परिग्रह ब्रह्मचर्य सुधार के ।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के ॥११

चौपाई—पिता अङ्ग यह हमरो नाहिं, भूख प्यास पुद्गल परछाहि ।
पाय परीषह कबहु न भजे, धर संन्यास मरण तन तजे ॥१२

छन्द—सन्यास धर-तनकू तजे नहिं दश मशक से डरें।
रहे नग्न तन वन खण्ड मे जहाँ मेघ मूसल-जल परें॥
तुम धन्य हो बडभाग तज के राज नृप उद्यम किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमे नृप पद क्यो दिया॥१३

चौपाई—भादो मे सुत उपजे रोग, आवे याद महल के भोग।
जो प्रमाद वस आसन टले, तो न दयाव्रत तुमसे पले॥१४

छन्द—जब दयाव्रत नहिं पले तव उपहास जग मे विस्तरे।
अर्हंत और निर्ग्रन्थ की कहो कौन फिर सरधा करे॥
तातें करो मुनी दान पूजा राज-काज सभाल के।
कुल आपने की रीत चालो मन धारके॥१५

चौपाई—हम तजि भोग चलेगे साथ, मिटे रोग भव भव के तात।
समता मदिर मे पग धरे, अनुभव अमृत सेवन करे॥१६

छन्द—करें अनुभव पान आतम ध्यान वीणा कर धरे।
आलाप मेघ मल्हार सोहैं सप्तभगी स्वर भरे॥
धृग् धृग् पखावज रोग भोग कू सन्तोष मन मे कर लिया।
तुमरी समझ सोई हमरो समझ० ॥१७

चौपाई—आशुन भोग तजे नहि जाये, भोगी जीवन को डसि खाय।
मोह लहर जिय की सुध हरे, ग्यारह गुण थानक चढ गिरे॥१८

छन्द—गिरे थानक ग्यारवे से आय मिथ्या भू परे।
विन भाव की थिरता जगत मे चतुर्गति के दु:ख भरे॥
रहे द्रव्य लिङ्गी जगत मे विन पौरुष हार के।
कुल आपने को रीति चालो राजनीति विचार॥१९

चौपाई—विषय विडार पिता तन कसे। गिर कन्दर निर्जन बन बसे।
महामत्र को लखि परभाव, भोग भुजङ्ग न चाले धाव॥२०

छन्द—घाले न भोग भुजङ्ग तब क्यो मोह की लहरा चढ़े।
परमाद तज परमात्मा प्रकाश जिन आगम पढें।
फिर काल लब्धि उद्योत होय सुहोय यों मन थिर किया।
तुमरी समझ हमरी समझ० ॥२१

चौपाई—कातिक मे सुत करे विहार, काटे काकर चुभे अपार।
मारे दुष्ट खैच के तीर, फाटे तन थरहरे शरीर॥२२

छन्द—थरहरे सागरी देह अपने हाथ काढत नहिं बनें ।
नहिं और काहू से कहे तब देह की थिरता हनें ।
कोई खेंच बांधे थम्भ से कोई खाय आंत निकाल के ।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार कें ॥२३

चोपाई— द:पद पुण्य धरा मे चले; कांटे पाप सकल दल मले ।
क्षमा ढाल तल धरे शरीर; विफल करे दुष्टन के तीर ॥२४

छन्द—कर दुष्ट जन के तीर निष्फल दया कुजर पर चढे ।
तुम सग समता खड्ग लेकर अष्ट कर्मन से लड़े ॥
धन धान्य यह दिनवार प्रभु तुम योग का उद्यम किया ।
तुमरी सोई समझ हमरी हमें नृप पद क्यो दिया ॥२५

चौपाई—अगहन मुनि तरनी तर रहे, ग्रीषम शैल शिखर दुख सहे ॥
मुनि जब आवत पावस काल; रहे साध जन बन विकराल ॥२६

छन्द रहे बन विकराल मे जहाँ सिंह श्याल सतावही ।
कानों मे बीछू बिल करे और ब्याल तन लिपटावही ॥
दे कष्ट प्रेत पिशाच आन अङ्गार पाथर डारके ।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के ॥२७

चौपाई हे प्रभु बहुत बार दुख सहे; बिना केवली जाय न कहै ।
शीत उष्ण नर्कन के तात; करत याद कम्पे सब गात ॥२८

छन्द—गात कम्पे नर्क से लहै शीत उष्ण अथाय ही ।
जहा लाख योजन लोह पिण्ड सु होय जल गल जाय ही ॥
असिपत्र बन कें दुख सहे परबस स्ववस तप ना किया ।
तुमरी समझ सोई समझ हमारी हमे नृपपद क्यो दिया ॥२९

चौपाई—पौष अर्थ अरू लेहु गयदं । चौरासी लख सुखकन्द ।
कोड़ि अठारह घोडा लेहु । लाख कोड़ि हल चलत गिनेहु ॥३०

छन्द—लेहु हल लख कोडि षटखण्डभूमि अरू नवनिधि बडी ।
लो देश को विभूति हमारी राशि रत्नन की पडी ।
धर देहु सिर पर छत्र तुमरे नगर धोख उचार के ।
कुल आपने कीं रीति चालो राजनीति विचार के ॥ ३१

चौपाई—अहो कृपानिधि तुम परसाद । भोगे भोग सवै मरयाद ॥
अब न भोग की हमकू चाह । भोगन मे भूले शिव राह ॥३२

छन्द—राह भूले मुक्ति की बहुबार सुरगति सचरे।
जहा कल्प बृक्ष सुगन्ध सुन्दर अपछरा मन को हरे॥
उदधि पी नहिं भया तिरपत ओस पीकें दिन लिया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमे नृप पद क्यो दिया ॥३३

चौपाई—माघ सघैन सुरन तै सोय। भोग भूमियन तै नहिं होय।
हर हरि अरु प्रतिहरि से वीर। सयम हेत धरै नहिं धीर ॥३४

छन्द—सयम कू धीरज नहिं धरे नहि टरे रण में युद्ध सू।
जो शत्रु गण गजराज कूं दलमले पकर विरुद्ध सू।
मुनि कोटि सिल मुदगर देह फैंक उपार के।
कुल आपने की० ॥३५

चौपाई—बध योग उद्यम नहिं करे। एतो तात कर्म फल भरे॥
बाधे पूर्व भव गति जिसी। भुगते जीव जगत मे तिसी ॥३६

छन्द—जीव भुगते कर्म फल कहो कौन विधि सयम धरे।
जिन बध जैसा बाधियो तैसा ही सुख दुख सो भरे।
यो जान सबको बध में निर्बंध का उद्यम किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमे नृप पद क्यो दिया ॥३७॥

चौपाई—फाल्गुन चाले शीतल वाय। थर थर कपे सबकी काय॥
तब भव बध विदारण हार। त्यागे मूढ महाव्रत सार ॥३८

छन्द—सार परिग्रह व्रत विसारे अग्नि चहुदिश जा रही।
करे मूढ सीत वितीत दुर्गति गहे हाथ पसार ही।
सो होय प्रेत पिशाच भूतरु ऊत शुभगति टारके।
कुल आपने की रीति० ॥३९

चौ०—हे मतिवन्त कहा तुम कही। प्रलय पवन की वेदन सही।
धारी मच्छ कच्छ की काय। सहे दुःख जलचर परजाय ॥४०

छन्द—पाय पशु परजाय परबस रहे सिग बधाय के।
जहाँ रोम रोम शरीर कम्पे मरे तन तरफाय के।
फिर गेर चाम उवेर स्वान सिचान मिल श्रोणित पिया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमे नृप पद क्यो दिया ॥४१

चौ०—चैत लता मदनोय होय। ऋतु बसन्त मे फूले सोय।
तिनकी इष्ट गन्ध के जोर। जागे काम महाबल फोर ॥४२

छन्द—फोर बलको काम जागे लेयमन पुरछी नही।
फिर ज्ञान परम निधांन हरि के करे तेरा तीन ही।
इतके न उतके तब रह गए कुगति दोऊ कर झार के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति बिचार के ॥४३

चौ०—ऋतु बसन्त बन मे नहिं रहे। भूमि पसाण परीषह सहे।
जहाँ नहिं हरति काय अंकूर। उड़त निरंतर अहनिशि धूर ॥४४

छन्द—उडे बन की धूर निशि दिन लगे कॉकर आय के।
सुन प्रेत शब्द प्रचण्ड के काम जॉय पलाय के॥
मत कहो अब कछु और प्रभु भव भोग मे मन कांपिया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमे नृप पद क्यों दिया ॥४५

चौ०—मास बैशाख सुनत अरदास। चक्री मन उपज्यो विश्वास।
अब बोलन को नाही ठौर। मैं कहू और पुत्र कहे और ॥४६

छन्द—और अब कछु मै कहूँ नही रीति जग की कीजिये।
एक बार हमसे राज लेके चाहे जिसको दीजिये।
पोता था एक षटमास का अभिषेक कर राजा कियो।
पितु संग सग जगजाल सेती निकस बन मारग लियो ॥४७

चौ०—उठे बज्रदन्त चक्रेश। तीस सहस भूप तजि अलवेश।
एक हजार पुत्र बडभाग। साठ सहस्र सती जग त्याग ॥४८

छन्द—त्याग जग कू ये चले सब भोग तज ममता हरी।
शमभाव कर तिहुँलोक के जीवों से यो विनती करी।
अहो जेते है सब जीव जग मे क्षमा हम पर कीजियो।
हम जैन दीक्षा लेत हैं, तुम बैर सब तज दीजियो ॥४९

चौ० वैर सबसे हम तजा अर्हंत का शरणा लिया।
श्री सिद्ध साहू की शरण सर्वज्ञ के मत चित दिया।
यो भाव पिहिताश्रव गुरुन ढिग जैन दीक्षा आदरी।
कर लौच तज के सोच सबने ध्यान मे दृढता धरी ॥५०

चौ०—जेठ मास लू ताती चले। सूकै सर कपिगण मदगले।
ग्रीष्म काज शिखर के सीस। धरो अतापन योग मुनीश ॥५१

छन्द—धरयोग आतापन सुगुरू ने तब शुक्ल ध्यान लगाइयो।
तिहुं लोकभानु समान केवल ज्ञान तिन प्रगटाइयो।

बज्रदन्त मुनीश जग तज कर्म के सन्मुख भये।
निज काल अरु पर काज करके समय मे शिवपुर गये ॥५२

चौ० - सम्यक्त्वादि सुगुण आधार के । भये निरजन निराकार ।
आवागमन तिलांजल दई । सब जीवन की शुभगति भई ॥५३

छन्द - भई शुभगति सवन की जिन शरण जिनपति की लई ।
पुरुषार्थ सिद्ध उपाय से परमार्थ की सिद्धी भई ।
जो पढे बारामास भावन भाय चित्त हुलसाय के ।
तिनके हो मगल नित नये अरु विघ्न जाय पलाय के ॥५४

दोहा -नित नित नव मगल बढे जो गावे गुणमाल ।
सुरनर के सुख भोग कर, पावे मोक्ष रसाल ॥५५

सवैया - दो हजार महीने बिहत्तर घटाय अब,
विक्रम को सवत् विचार के धरत हूँ ।
अगहन असि त्रयोदसी मृगाक वार,
अर्द्ध निशा माहि यहि पूरण करत हूँ ॥
इति श्री बज्रदन्त चक्रवर्ती को वृत्तान्त,
रच के पवित्र नैन आनन्द भरत हूँ ।
ज्ञानवान करो शुद्ध जान मोरि बाल-बुद्धि,
दोष ये न रोष करो पायन परत हूँ ॥५६

प्रेम-महेश के परिणय

पर

पूज्य पितामह भगत जी का शुभाशीर्वाद

श्री चिरंजीवी बेटी प्रेमलता

दर्शन विशुद्धि !

यह जानकर मोहजनित प्रसन्नता हुई, कि मिती चैत बदि ६ स० २००६ को शुभ लग्न मे चिरंजीव महेशचन्द्र सुपुत्र ला० विश्वम्भरदास जी खतौली निवासी के साथ तुम्हारा पाणिग्रहण होना निश्चय हुवा है। अब तुम गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर रही हो जो मोक्ष मार्ग की प्रवृत्ति मे सहायक साधन है। अब तुम्हारा उत्तरदायित्व बहुत बढ जायगा। तुम्हारे महान पुण्योदय से तुम्हारे पतिदेव तथा सभी कुटुम्बी-जन धर्मातमा पुरुषो का सम्पर्क तुम्हें प्राप्त होगा। यह तुम्हारी योग्यता पर निर्भर है। यदि स्त्री सुबोध और विदुषी हो तो वह घर को स्वर्ग धाम बना लेती है और सकल जनो—अपने पूज्य सास ससूर जेठ जिठानी ननद और पति देव आदि की आज्ञा का पालन कर तथा उनकी सेवा सुश्रुषा द्वारा उन्हे अपने अनुकूल बना लेती है जिससे गृह मे शान्ति का साम्राज्य चारों ओर छा जाता है।

निराकुलता ही सकल सुख की जननी है आकुलता ही दुख एव कलह की जनक है शान्ति के वातावरण मे ही धर्म व सुख प्राप्त हो सकता है।

१ धर्मातमा वीर माता की कूख से ही तीर्थंकर जैसे स्व-परोपकारी समस्त ससार के जीवो को कल्याणकर्त्ता महापुरुषो का जन्म हुवा है। जिनके तीर्थ से परम्परया मोक्ष मार्ग की प्रवृति चलती है। जिनका अनुकरण कर भव्य जीव अपना आतम-कल्याण कर लेते है।

२ वैष्णव कुल मे जन्म लेने वाली वीर धर्मात्मा माताने ही केवल जैन-धर्म के णमोकार मन्त्र का श्रद्धान होने के बल पर ही पूज्य गुरुवर श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रशाद जी वर्णी जैसे महान पुरुष, विद्या

प्रेमी जैन सस्कृति के प्रसारक महामानव को जन्म दिया जो इस भौतिकवाद के जमाने में भी अध्यात्मवाद का चारो ओर स्रोत वहा कर लाखों भव्य जीवो के हृदय को सिंचन करते हुए मोक्ष मार्ग मे लगा कर स्वय अपरिग्रहवाद, श्रमणसस्कृति को अपना कर शान्ति प्राप्त कर रहे हैं।

३. वीर माताओ ने ही परोपकारी महात्मा गाधी, जवाहरलाल, सुभाप वावू, लक्ष्मी वाई आदि महान पुरुषो को जन्म दिया है ये सव विदुषी माताओ के ऊपर ही निर्भर है।

४ प्रथम शिक्षा वच्चो को वाल्यावस्था मे माता के द्वारा ही प्राप्त होती है, यदि माता विदुषी धर्मात्मा हो तव वच्चो के कोमल-हृदय मे धार्मिक सस्कारो का अकुरारोपण कर देती है जिससे शनै-शनै वृद्धि को प्राप्त होकर स्वोपकार के साथ-साथ परोपकार करते हुए मोक्ष मार्ग के पथिक होकर पूर्ण निराकुलता प्राप्त कर लेते है। जिसका उदाहरण विदुषी माता मदालसा का मौजूद है जव वह अपने वच्चे को पालने मे झुलाती थी तव हिलोरिया देते हुए उसके कोमल हृदय मे वीरता का पाठ पढा धार्मिक सस्कार भर रही थी।

श्लोक :— शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरजनोऽसि, ससारमाया परिवर्जितोसि ।
ससार स्वप्नं तज मोहमुद्रां मदालसा पुत्रमिद ह्युवाच ॥

माता के द्वारा वाल्य जीवन मे भरे हुए सस्कारो की बदौलत कुद-कुद भगवान अध्यात्मवाद समयसार आदि महान ग्रन्थो का निर्माण कर भव्य जीवो को अध्यात्म रस का पान कराते हुए स्वय निजरस मे मग्न हो मोक्ष मार्ग के पथिक बन गए।

५ रत्नत्रय का साधनभूत शरीर जिसकी स्थिति का कारणभूत आहार दान भी निपुण माता के द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है जिसको सदगृहस्थ ही दान देकर मोक्ष मार्ग की प्रवृत्ति को चला सकता है। इसलिए बेटी तुमको वीरता के साथ अपने कुटुम्ब की रक्षा करते हुए, सयम को पालन कर कुटुम्बीजनो का पालन-पोषण करते हुए, अतिथियो को आहार दान देते हुए, मनुष्य जन्म को सफल बनाना है और यही मनुष्य जन्म पाने का सार है।

६ यही भगवान का भव्य जीवो के प्रति आगम मे उपदेश है कि यदि आप ससार मे सुखी होना चाहते हो तो मिथ्यात्व को त्याग

अपने को पहिचान कर अपनी शान्ति के वाधक पर-पदार्थों में जो यह राग द्वेष मोह परिणति है उसको मूर्छा का कारण जान बुद्धिपूर्वक छोड़ने की कोशिश करो और उसकी सहायक सहेली जो तुम्हारी इच्छाए है उनको अपना शत्रु जान बुद्धिपूर्वक निर्मल करने की कोशिश करो। यही मोक्ष मार्ग मे सच्चा पुरुषार्थ और शान्ति का सरल उपाय भगवान ने वताया है इसलिए जो हमने अपनी जिन्दगी की जरूरियातो-आवश्यकताओ को व्यर्थ बढ़ा रखा है जैसे कि पाउडर आदि पोतना सिनेमा आदि देखना वाजार की चाट मिठाई आदि अभक्ष्य का भक्षण करना, उसको छोड़ना ही होगा तभी हम गृहस्थी मे रह कर सुख शान्ति का जीवन व्यतीत कर सकते है इसलिए हमे नित्य प्रति षट् आवश्यक का पालन जो गृहस्थियो का नित्य प्रति मुख्य कर्तव्य है उसको नियमपूर्वक पालन करना ही होगा :

देव पूजा गुरूपास्ति स्वाध्याय, सयमस्तप.।
दान चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने ॥

(१) देव पूजा -सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का कारण वीताराग सर्वज्ञ हितोपदेशी भगवान के गुणो मे अनुराग करते हुए पर पदार्थ जो अष्ट द्रव्य उनका द्रव्य और भाव से त्याग कर वीताराग के अंश की प्राप्ति कर पूर्ण वीतराग होने की नित्य प्रति भावना जागृत करना और इसी का अनुकरण शुरू से बच्चो को कराना ये ही देवदर्शन का माहात्म्य है —

(२) गुरूपास्ति—साक्षात गुरू तो अर्हन्त परमेष्टी है, अपर गुरू गणधादि दिगम्बर आदि मुनि उनकी प्रत्यक्ष या परोक्ष मन वचन काय से भक्ति करना, उनके बताए हुए आठमूल गुण आदि का भली भाति पालन करते हुए उनके अनुकूल प्रवृत्ति करना यही गुरू भक्ति है।

आठ मूल गुण

मद्य-पल-मधु-निशाशन पञ्चफली विरति पञ्चकाप्तनुति.।
जीवदया जलगालनमिति, च क्वचिदष्टमूलगुणा. ॥

श्री पंडित प्रवर आशाधर जी

मद्यमांसमधुत्यागै सहाणुव्रतपञ्चकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहु गृहिणा श्रमणोत्तमा ॥

श्री स्वामी समन्तभद्राचार्यजी

(१) जीव दया-स्वपर शान्ति के बाधक पाचपाप हिंसा, चोरी, झूठ, कुशील परिग्रह की मूर्छा का एक देश त्याग करना इसके लिए नित्य प्रति हर समय इस पाठ को याद करना ।

आत्मन प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्

जो वाते तुम्हे अच्छी न लगे दूसरो के प्रति नही करना यही अहिसा धर्म है ।

(२) शहद —मधु मक्खी के अडो के घात से उत्पन्न हुआ एवं मधु मक्खी का वमन लस जीवो का पिण्ड बुद्धि को मलिन करने वाला हिंसा का कारण पाप का मूलभूत ऐसे शहद को दूर से ही त्याग करना ।

(३) मास . त्रसजीवों के घात से उत्पन्न, त्रस जीवो का पिंड बुद्धि को मलिन कर क्रूरता पैदा कर स्वपर विवेक को नष्ट करने वाला ऐसे मास को दूर से ही त्याग करना ।

(४) शराब -मादक पदार्थ सडाने से असख्यात त्रस जीवो की उत्पत्ति होने पर उनके घात से उत्पन्न हुई महा हिंसा के पाप के बध का कारण मन को मोहित कर स्वपर विवेक को नष्ट कर दुर्गन्ध मय पागल बनाने वाली ऐसी वस्तु को उत्तम कुलीन को दूर से ही त्याग कर देना चाहिए ।

(५) पाँच उदम्बर —बड, पीपर, ऊमर, कठूमर, पाकर फल, त्रस जीवो का पिंड मन को मलीन कर क्रूरता पैदा कर स्वपर विवेक को नष्ट करने वाला पाप के बीज दूर से ही त्याग करना ।

(६) रात्रि भोजन सूर्यास्त होने पर जहाँ तक हो सके चारो प्रकार के आहार का त्याग करना खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय, क्योकि सूर्य अस्त होने पर असख्यात सूक्ष्म जन्तुओं का सचार शुरू हो जाता है जो स्थूल दृष्टि मे नजर नही आते । यदि कोई विषैला जन्तु भक्षण किया जावे तो
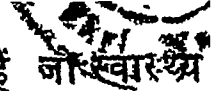
नाना प्रकार के रोग उत्पन्न कर देते हैं जो स्वास्थ्य के लिए बाधक हैं इसलिए रात्रि भोजन त्याग श्रावको का मुख्य धर्म है।

(७) जल छानना — वर्तन के मुह से तिगुना मोटा दोहरा सफेद छन्ना से पानी छानकर जिवानी यथायोग्य स्थान पर पहुँचा कर जल काम में लाना चाहिए इस क्रिया के करने से जीव दया का पालन तो स्वयमेव ही हो जाता है परन्तु स्वास्थ्य वर्धक निर्दोष जल भी पीने को प्राप्त हो जाता है, इसलिए यह भी श्रावक की मुख्य क्रिया है।

(८) देव दर्शन देवदर्शन नित्य प्रति मदिर में जाकर देवदर्शन द्वारा शुभ परिणाम कर पञ्च परमेष्टी आदि का जाप दे महान् पुण्य संचय कर परम्पराय मोक्ष प्राप्ति करने का साधन है। इन आठ मूल गुणो को धारण किये वगैर नाम मात्र भी श्रावक सज्ञा आचार्यो ने नही कही है इसलिए इनको धारण कर पाक्षिक श्रावक के व्रत पालन करते हुए मुक्ति व्रत की भावना भाते हुए नैष्ठिक श्रावक होना चाहिए, यही मनुष्य जन्म पाने का सार है, जो महा ऋद्धिधारी इन्द्र को स्वर्ग मे भी दुर्लभ है।

(३) स्वाध्याय नियम पूर्वक प्रति दिन किसी एक धार्मिक ग्रन्थ का मनन पूर्वक कम से कम घण्टा आधघन्टा स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए और ग्रन्थ को आद्योपान्त पूर्ण करना चाहिए। जो समझ में न आवे उसको एक कोरी कापी मे नोट कर लेवे, जब कोई विशेषज्ञ विद्वान् मिले उनसे पूछकर निर्णय कर लेवे और नित्य प्रति श्री दशाध्याय सूत्र जी, भक्तामर जी, छहढाला, मेरी भावना आदि का जबानी पाठ जरूर याद करना, येही गांठ का धन है, जो हमेशा काम आने वाला है। स्वाध्याय को ही भगवान ने अन्तरङ्ग तप में निर्जरा का कारण बताया है, यही तत्व विचार का जनक, अन्तरङ्ग संयम का मूलभूत भेद विज्ञान का कारण है।

(४) सयम—सयम १२ प्रकार है–छ काय के जीवो की रक्षा पाँच इन्द्रिय छट्ठे मन को वश मे करना। बेटी ये हमेशा ध्यान रखना कि पर्व के दिनो मे पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना। जहाँ तक हो सके अपने हाथ से आटा पीस कर शुद्ध भोजन करने मे रुचि रखना। बाजार की चाट मिठाई आदि अभक्ष्य भक्षण नही करना, सिनेमा आदि देखने का हमेशा के लिए त्याग करना। यही आत्म बल को बढाने वाले निराकुलता के साधन शान्ति के मूल हैं, इस सयम के बल पर ही महारानी सीता जी के शील के प्रभाव के सामने रावण जैसे विभवशाली महा सुभट का भी बल नही चला, उसे भी परास्त होकर जमीन मे घुटने टेकने पडे। यहाँ तक कि महा भयानक अग्नि-कुड भी शात होकर चारो तरफ जलमय हो गया। वीर स्त्रियाँ ही स्वय अपने आत्मबल से अपनी रक्षा कर सकती है और स्त्रीलिग को छेद कर परब्रह्मरूप मोक्ष प्राप्त कर लेती हैं। परन्तु बेटी, यह ध्यान अवश्य रखना कि हमारी मोक्ष मार्ग की घातक जो यह क्रोध, मान, माया, लोभ–अन्तरङ्ग राग द्वेष मोह परिणति है उसको ही आत्मशान्ति घात करने वाले महान् शत्रु पहिचानकर वीरता के साथ बुद्धि पूर्वक उनका अश-अश निर्मूल करना ही होगा।

(५) तप – पर पदार्थो मे राग-द्वेष रहित समता भाव से जितना बने त्रिकाल सामायिक का अभ्यास करना ही पूर्ण सच्ची शान्ति प्राप्त करने का उपाय है। तप के भेद १२ प्रकार आगम मे भगवान् ने बताये हैं उनको देखकर यथा योग्य भलीभाँति पालन करना।

(६) दान—पर पदार्थो मे मूर्च्छा का त्याग कर चार प्रकार के पात्र मुनि अर्जिका श्रावक श्राविकाओ को भक्ति से तथा दुखित भुक्षित को करुणा से चार प्रकार का दान-आहार दान शुद्ध औषधि दान पात्र को शास्त्र दान अपात्र को धर्मोपदेश और रोगी को भोजन औषध आदि देना अभय

दान प्राणि मात्र को यथा योग्य वैय्यावृत्ति करनी । बेटी
इस बात का पूर्ण ध्यान रखना कि अपने द्वारे पर कोई
दुखित भुखित जीव निराश न हो जावे। यदि कोई
योग्य साधन न मिले तब कुछ न कुछ रकम दान मे
परोपकार के लिए निकाल कर ही भोजन करना चाहिए,
यही त्याग मार्ग मोक्ष का जनक है ।

बेटी प्रेमलता !

तुम्हारे पूज्य माता पिता पू० चाचा चाची पू० गुरू आदि ने तुम्हारा पालन पोषण शिक्षण करने तथा तुमको योग्य बनाने मे पूर्ण सहयोग देकर जो तुम्हारा महान् उपकार किया उसको कभी नही भूलना, हमेशा यही भावना बनाये रखना कि हे भगवान् मुझे उनके प्रति कभी प्रत्युपकार करने का अवसर ही न आवे यानी उनको कभी किसी प्रकार का कष्ट ही प्राप्त न हो ।

मेरा शुभाशीर्वाद

तुम्हारे शुभ विवाह सस्कार के उपलक्ष मे मेरा तो यही शुभाशीर्वाद है कि तुम पतिव्रता महारानी सीता की तरह पति सेवा करती हुई पूर्व पुण्यकर्म के उदय से मिले पूर्ण विभव को भोगती हुई मुनिदान पूजादि शुभ प्रवृति करती हुई मोक्ष मार्ग की प्रवृति मे प्रगति शील परोपकारी सतान का पालन पोषण करती हुई महारानी मदालसा की धार्मिक शिक्षा देकर बालक को मोक्ष मार्गी बनाकर अपने कर्त्तव्य का पालन करती हुई श्राविका, उत्कृष्ट सयम धारण कर महाव्रत आदि धारण कर स्त्रीलिग छेदकर स्वर्गादिक मे इन्द्रादिक के भौतिक सुखो को हेय जानती हुई पुण्य कर्म का फल भोग मनुष्य जन्म पाय महाव्रत धारण कर कर्म को खिपाय केवलज्ञान प्राप्त कर पति देव के साथ-साथ ही निराकुलता के स्थान मोक्ष मे परमात्मपद के अव्याबाध निराकुलता मय पूर्ण सुख को प्राप्त करो ।

तुम्हारा शुभचिन्तक —
सुमेरचन्द वर्णी
इटावा यू० पी०

मार्च १९५०

प्रेमलता के विवाह पर पूज्य ब्र० गणेशप्रसाद जी वर्णी का पत्र

श्रीयुत महाशय लाला मुन्नालाल जी !

योग्य दर्शन विशुद्धि ! आपके यहाँ श्री प्रेमलता का विवाह है और जिस महाशय के सुपुत्र के साथ विवाह है वह योग्य हैं। दम्पति को यह शिक्षा देना जो प्रयोजन मोक्षमार्गोपयोगी सन्तान है तथा दूसरा प्रयोजन विषयेच्छा निवृति है जिसने इस पर दृष्टिपात की वे ही ससार मे सुख के पात्र हैं तथा केवल वाह्याडम्वर से दोनो रक्षित रहे, यह भी उपदेश देना तथा जो उन्हे द्रव्य का लाभ हो उसमे से जो उन दोनो की हार्दिक इच्छा ो दान करे तथा एक दान यह करे - जो सन्तान की उत्पत्ति के बाद दो वर्ष अखण्ड ब्रह्मचर्य मे रहे तथा इतने दिन अवश्य ब्रह्मचर्य से रहे—अष्टमी, चतुर्दशी, अष्टाह्निका, ३ सोलह कारण, दशलक्षण, जन्म तिथि दोनो की।

चैत्र वदि १ स० २००६

आपका शुभचिंतक
गणेशप्रसाद वर्णी।

नोट—१. मर्यादातिक्रम कर व्यय करना— अच्छा नही।

२ वाह्यप्रशसा के लिए व्यय करना पानी विलोवन के सदृश है।

३. मान कषाय के वशीभूत होकर दान करना खाक के लिए चन्दन दग्ध करने के सदृश है।

समाधिमरण पत्र पुञ्ज

ये पत्र ब्र० दीपचन्द्र वर्णी और स्व० उदासीन ब्र० मौजीलाल जी सागर वालो के समाधि लाभार्थ उनके पत्र प्रत्युत्तर मे पूज्य प० गणेशप्रसाद जी वर्णी के द्वारा लिखे गये है। एक-एक पक्ति मे आत्मरसिकता झलक रही है अत शान्तिपूर्वक प्रत्येक वाक्य का परिशीलन कर उसका मन्तव्य हृदयगत करना चाहिये। ये पत्र सर्वप्रथम ब्र० कस्तूरचन्द्र जी नायक जबलपुर के द्वारा समाधिमरण पत्र-पुञ्ज नाम से प्रकाशित किये गये थे। द्वितीय बार वर्णी स्नातकपरिषद् सागर की ओर से सतना अधिवेशन के समय 'वर्णी अध्यात्म पत्रावली' के अन्तर्गत प्रकाशित हुए है। भगत सुमेरचन्द्र जी वर्णी को आत्म-साधना मे इन पत्रो से बहुत सहयोग प्राप्त हुआ था इसलिये उन्हे समाधिमरण के इच्छुक महानुभावो के लाभार्थ प्रकाशित कर रहे है। —सपादक,

श्रीमान् वर्णी जी,

योग्य शिष्टाचार !

सत्य दान तो लोभ का त्याग है और उसको मैं चारित्र का अश मानता हू। मूर्छा की निवृत्ति ही चरित्र है। हमको द्रव्य त्याग मे पुण्य-बन्ध की ओर दृष्टि न देनी चाहिये, किन्तु इस द्रव्य से ममत्व निवृत्ति द्वारा शुद्धोपयोग का बर्धक दान समझना चाहिये। वास्तविक तत्त्व तो निवृत्तिरूप है। जहा उभय पदार्थ का बन्ध है वही ससार है जहा दोनो वस्तु स्वकीय-स्वकीय गुण पर्यायो मे परिणमन करती हैं वही निवृत्ति है, वही सिद्धान्त है। कहा भी है—

> सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां
> शुद्ध चिन्मयमेकमेव परमज्योतिस्सदैवास्म्यहम्।
> एते ये तु समुल्लसन्ति विविधाभावा पृथगलक्षणा-
> स्तेह नास्मि यतोऽत्र मे मम परद्रव्य समग्रा अपि ॥

अर्थ—यह सिद्धान्त उदारचरित्र और उदारचरित्र वाले मोक्षार्थियो को सेवन करना चाहिये कि मैं एक ही शुद्ध (कर्मरहित)

चैतन्यस्वरूप परम ज्योति वाला सदैव हू। तथा ये जो भिन्न-भिन्न लक्षण वाले नाना प्रकार के भाव प्रकट होते है, वे मैं नही हू क्योकि ये सपूर्ण परद्रव्य हैं।

इस श्लोक का भाव इतना सुन्दर और रुचिकर है जो हृदय मे ससार का आताप कहा जाता है ? पता नही लगता। आप जहा तक हो अब इस समय शारीरिक अवस्था की ओर दृष्टि न देकर निजात्मा की ओर लक्ष्य देते हुए उसी के स्वास्थ्य की औषधि का प्रयत्न करना। शरीर ‸रद्रव्य है, उसकी कोई भी अवस्था हो, उसका ज्ञाता द्रष्टा ही रहना। सो ही समयसार मे कहा है—

को नाम भणिज्ज वुहो परदव्व मम इम हवदि दव्व।
अप्पाणमप्पणो परिग्गह तु णियद वियाणतो॥

भावार्थ—'यह परद्रव्य मेरा है' ऐसा ज्ञानी पण्डित नही कह सकता। क्योकि ज्ञानी जीव तो आत्मा को ही स्वकीय परिग्रह मानता या समझता है।

यद्यपि विजातीय दो द्रव्यो से मनुष्य पर्याय की उत्पत्ति हुई है किन्तु विजातीय दो द्रव्य मिल कर सुधाहरिद्रावत् (हल्दी और चूना के समान) एक रूप नही परिणमे हैं। वहाँ तो दोनो के वर्ण गुण का एक रूप परिणमना कोई आपत्तिजनक नही है क्योकि दोनो एक अचेतन-पुद्गल द्रव्य के परिणमन हैं किन्तु यहा पर एक चेतन और अन्य अचेतन द्रव्य है। इनका एक रूप परिणमना न्याय प्रतिकूल है क्योकि दो पृथक् द्रव्यो का एक रूप परिणमन त्रिकाल मे भी सभव नही है। पुद्गल के निमित्त को प्राप्त होकर आत्मा रागादि रूप परिणम जाता है। फिर भी रागादि भाव औदयिक है अत बन्ध जनक है, आत्मा को दु ख जनक है, अत हेय है। परन्तु शरीर का परिणमन आत्मा से भिन्न है अत न वह हेय है और न वह उपादेय है। इस ही को समयसार मे श्री महर्षि कुन्दकुन्दाचार्य ने निर्जराधिकार मे लिखा है—

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलय।
जम्हा तम्हा गच्छदु तह वि हु ण परिग्गहो मज्झ॥

अर्थ—यह शरीर छिद जाओ, अथवा भिद जाओ, अथवा ले जाओ, अथवा नष्ट हो जाओ, जैसे-तैसे हो जाओ तो भी मेरा परिग्रह नही है।

इसी से सम्यग्दृष्टि के परद्रव्य के नाना प्रकार के परिणमन होते हुए भी हर्ष विषाद नही होता। अत· आपको भी इस समय शरीर की क्षीण अवस्था होते हुए कोई विकल्प न कर तटस्थ ही रहना हितकर है।

चरणानुयोग मे जो परद्रव्यो की शुभाशुभ मे निमित्तत्त्व की अपेक्षा हेयोपादेय को व्यवस्था की है, वह अल्पप्रज्ञ के अर्थ है, आप तो विज्ञ है। अध्यवसान को ही बन्ध का जनक समझ उसी के त्याग की भावना करना और निरन्तर 'एगो मे सासदो आदा णाणदसण लक्खणो' अर्थात् ज्ञानदर्शनात्मक जो आत्मा है वही उपादेय है। शेष जो वाह्य पदार्थ है वे मेरे नही है।

मरण क्या वस्तु है ? आयु के निषेक पूर्ण होने पर मनुष्य पर्याय का वियोग मरण, तथा आयु के सद्भाव मे पर्याय का सम्बन्ध सो ही जीवन है। अब देखिये, जैसे जिस मन्दिर मे हम निवास करते है उसके सद्भाव-असद्भाव में हमको किसी प्रकार का हानि लाभ नही, तब क्यो हर्ष-विषाद कर अपने पवित्र भावो को कलुषित किया जावे। जैसा कि कहा है—

प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरण प्राणा किलस्यात्मनो
ज्ञान सत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित्।
अस्यातो मरण न किञ्चिद्भवेत्तद्भी कुतो ज्ञानिन
नि शङ्क सतत स्वय स सहजं ज्ञान सदा विन्दति ॥

अर्थ प्राणो के नाश को मरण कहते है और प्राण इस आत्मा का ज्ञान है। वह ज्ञान सत् रूप स्वय ही नित्य होने के कारण कभी नष्ट नही होता है। अत इस आत्मा का कुछ भी मरण भी नही है तो फिर ज्ञानी को मरण का भय कहा से हो सकता है ? वह ज्ञानी स्वय निःशल्य होकर निरन्तर स्वाभाविक ज्ञान को सदा प्राप्त करता है।

इस प्रकार आप ऐसे मरण का प्रयास करना जो परम्परा मातृ-स्तन्यपान से बच जाओ—पुन जन्म लेकर माता का दुग्धपान न करना पडे। इतना सुन्दर अवसर हस्तगत हुआ है, अवश्य इससे लाभ लेना।

आत्मा ही कल्याण का मन्दिर है, अत पर पदार्थो की किंचित्-

मात्र भी आप अपेक्षा न करे। अव पुस्तक द्वारा ज्ञानाभ्यास करने की आवश्यकता है। यह कार्य न तो उपदेष्टा का है और न समाधिमरण मैं सहायक पण्डितो का है। अव तो अन्य कथाओ के श्रवण करने मे समय को न देकर उस शत्रु सेना का पराजय करने मे सावधान होकर यत्नशील हो जाओ।

यद्यपि निमित्त को प्रधान मानने वाले तर्क द्वारा वहुत-सी अपत्ति इस विषय मे ला सकते है फिर भी कार्य करना अन्त मे तो आपका ही कर्त्तव्य होगा। अत जब तक आपकी चेतना सावधान है, तब तक निरन्तर स्वात्मस्वरूप चिन्तवन मे लगा दो।

श्री परमेष्ठी का भी स्मरण करो किन्तु ज्ञायक की ओर ही लक्ष्य रखना, क्योकि मैं ज्ञाता द्रष्टा हू, ज्ञेय भिन्न है, उनमेइष्टानिष्ट विकल्प न हो, यही पुरुपार्थ करना और अन्तरङ्ग मे मूर्च्छा न करना। रागादि भावो को तथा उनके ववताओ को दूर से ही त्यागना। मुझे आनन्द इस बात का है कि आप नि शल्य है। यही आपके कल्याण की परमौषधि है।

× × ×

महाशय !

योग्य शिष्टाचार !

आपके शरीर की अवस्था प्रत्यह क्षीण हो रही है। इसका ह्रास होना स्वाभाविक है। इसके ह्रास और वृद्धि से हमारा कोई घात नही। क्योकि आपने निरन्तर ज्ञानाभ्यास किया है, अत आप इसे स्वय जानते है अथवा मान भी लो, अथवा शरीर के शैथिल्य से तदवयवभूत इन्द्रियादिक भी शिथिल हो जाती है तथा द्रव्येन्द्रिय के विकृतभाव से भावेन्द्रिय स्वकीय कार्य करने मे समर्थ नही होती है। किन्तु मोहनीय उपशमजन्य सम्यक्त्व की इसमे क्या विराधना हुई। मनुष्य शयन करता है उस काल जागृत अवस्था के समान ज्ञान नही रहता, किन्तु जो सम्यग्दर्शन गुण ससार का अन्तक है, उसका आशिक भी घात नही होता। अतएव अपर्याप्त अवस्था मे भी सम्यग्दर्शन माना है। जहाँ केवल तैजस कार्माण- शरीर है, उत्तरकालीन शरीर की पूर्णता नही तथा आहारादि वर्गणा के ग्रहण का अभाव है वहा भी सम्यग्दर्शन का सद्भाव रहता है। अत आप इस बात की रचमात्र आकुलता न करे कि हमारा शरीर क्षीण हो रहा है, क्योकि शरीर परद्रव्य है, उसके

सम्बन्ध से जो कार्य होने वाला है वह हो अथवा न हो, परन्तु जो वस्
आत्मा ही से समन्वित है उसकी क्षति करने वाला कोई नही, उसव
रक्षा है तो मसार तट समीप ही है ।

विशेष बात यह है कि चरणानुयोग की पद्धति से समाधि के अर्थ बाह्य सयोग अच्छे होना विधेय है, किन्तु परमार्थ दृष्टि से निज प्रबलतम श्रद्धान ही कार्यकर हैं । आप जानते हैं कि कितने ही प्रबल ज्ञानियो का समागम रहे, किन्तु समाधिकर्ता को उनके उपदेश श्रवण कर विचार तो स्वय करना पड़ेगा । जो मै एक हू, रागादि शून्य हू; यह जो सामग्री देख रहा हू वह परजन्य है, हेय है, उपादेय निज ही है परमात्मा के गुणगान से परमात्मा के द्वारा परमात्मपद की प्राप्ति नही, किन्तु परमात्मा के द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलने से-ही उस पद का लाभ निश्चित है अत सब प्रकार की झझटो को छोड कर भाई साहब ! अब तो केवल वीतरागनिर्दिष्ट पथ पर ही आभ्यन्तर परिणाम से आरूढ हो जाओ । वाह्य त्याग की वही तक मर्यादा है जहा तक निज भाव मे बाधा न पहुचे ।

अपने परिणामो के परिणमन को देख कर ही त्याग करना, क्योकि जैन सिद्धान्त मे सत्य पथ मूर्छात्याग वाले के ही होता है । अतः जो जन्म भर मोक्षमार्ग का अध्ययन किया उसके फल का समय है, इसे सावधानतया उपयोग मे लाना । यदि कोई महानुभाव अन्त मे दिगम्बर पद की समति देवे तब अपनी अभ्यन्तर विचारधारा से कार्य लेना । वास्तव मे अन्तरङ्ग बुद्धिपूर्वक मूर्छा न हो तभी उस पद के पात्र बनना । इसका भी खेद न करना कि हम शक्तिहीन हो गये है, अन्यथा यह कार्य अच्छी तरह से सम्पन्न करते । हीन शक्ति शरीर की दुर्बलता है । अभ्यन्तर श्रद्धा मे दुर्बलता न हो, अतः निरन्तर यही भावना रखना—

'एगो मे सासदो आदा णाणदंसणलक्खणो ।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे सजोगलक्खणा ॥'

अर्थ एक मेरी शाश्वत आत्मा ज्ञानदर्शन लक्षणमयी है, शेप तो बाहरी भाव हैं ।

अतः जहाँ तक बने, स्वय आप समाधानपूर्वक अन्य को समाधि का उपदेश करना कि जब समाधिस्थ आत्मा अनन्त शक्तिशाली है

सर्व यह कौन-सा विशिष्ट कार्य है। यह तो उन शत्रुओ को चूर्ण कर देता है जो अनन्त ससार के कारण है।

इस ससार मे गोते खाने वाले जीवो को केवल जिनागम ही नौका है। उसका जिन भव्य प्राणियो ने आश्रय लिया है वे अवश्य ही एक दिन पार होगे। आपने लिखा कि हम मोक्षमार्ग प्रकाशक की दो प्रति भेजते है सो स्वीकार करना, भला ऐसा कौन होगा जो इमे स्वीकार न करे। कोई तीव्र कपायी ही ऐसी उत्तम वस्तु अनगीकार करे तो करे। परन्तु हम तो शतश धन्यवाद देते हुए आपकी भेट को स्वीकार करते है।

क्या करे, निरन्तर इसी चिन्ता मे रहते हैं कि कव ऐसा शुभ समय आवे जव वास्तव मे हम इसके पात्र हो। अभी हम इसके पात्र नही हुए है, अन्यथा तुच्छ वातो मे नाना कल्पनाए करते हुए दु खी न होते। अव भाई साहव ! जहाँ तक वने, हमारा और आपका मुख्य कर्तव्य रागादिक दूर करने का ही निरन्तर रहना चाहिये। क्योकि आगम ज्ञान और श्रद्धा मात्र से, विना सयतत्वभाव के मोक्षमार्ग की सिद्धि नही, अत प्रयत्न का यही सार होना चाहिये, जो रागादिक भावो का अस्तित्व आत्मा मे न रहे।

ज्ञान वस्तु का परिचय करा देता है अर्थात् अज्ञान-निवृत्ति ज्ञान का फल है, किन्तु ज्ञान का फल उपेक्षा नही, उपेक्षा फल चारित्र का है। ज्ञान मे आरोप से वह फल कहा जाता है। जन्म भर मोक्षमार्ग विपयक ज्ञान का सपादन किया, अव एक वार उपयोग मे लाकर उसका आस्वाद लो। आज कल चरणानुयोग का अभिप्राय लोगो ने परवस्तु के त्याग और ग्रहण मे ही समझ रखा है, सो नही चरणानुयोग का मुख्य प्रयोजन तो स्वकीय रागादिक के मेटने का है, परन्तु वह पर-वस्तु के सम्बन्ध से होते हैं अर्थात् पर-वस्तु उसका नोकर्म होती है, अत उसका त्याग करते है। मेरा उपयोग अव इन वाह्य वस्तुओ के सम्वन्ध से भयभीत रहता है। मै तो किसी के समागम को अभिलाषा नही करता हू। आपको भी समति देता हू कि सवसे ममत्व हटाने की चेष्टा करो। यही पार होने की नौका है।

जव पर मे रागभाव घटेगा तव स्वयमेव निराश्रय अहवुद्धि घट जावेगी, क्योकि ममत्व और अहकार का अविनाभाव सम्बन्ध है,

एक के बिना अन्य नही रहता। बाई जी के बाद मैंने देखा कि अब तो स्वतन्त्र हू, दान मे सुख होता होगा, इसे करके देखू। ६०००) रुपये मेरे पास था, सर्व त्याग कर दिया परन्तु कुछ भी शान्ति का अंश नही पाया। उपवासादिक करके शान्ति न मिली, पर की निन्दा और आत्म-प्रशसा से भी आनन्द का अकुर प्रस्फुटित नही हुआ। भोजनादि की प्रक्रिया से भी शान्ति का लेश नही पाया, अत यही निश्चय किया कि रागादिक गये बिना शान्ति की उद्भूति नही। तात्पर्य यही है कि सर्व व्यापार उसी के निवारण मे लगा देना ही शान्ति का उपाय है। बाग्जाल के लिखने से कुछ भी सार नही है।

मैं यदि अन्तरङ्ग से विचार करता हूं तौ जैसा आप लिखते है उसका पात्र नही क्योकि पात्रता का नियामक कुशलता का अभाव है। वह अभी कोशो दूर है। हा, अवश्य है यदि योग्य प्रयास किया जायगा तब दुर्लभ भी नही, वक्तृत्वादि गुण तो आनुषङ्गिक है। श्रेयोमार्ग की निकटता जहा-तहा होती है वही वही वस्तु पूज्य है। अत हम और आपको बाह्य वस्तुजात मे मूर्छा की कृशता कर आत्मा तत्त्व को उत्कृष्ट बनाना चाहिये। ग्रन्थाभ्यास का प्रयोजन केवल ज्ञानार्जन ही तक सीमित नही होता, साथ ही पर पदार्थों से उपेक्षा भी होनी चाहिये। आगम ज्ञान की प्राप्ति और ही है और उसकी उपयोगिता का फल और ही है। मिश्री की प्राप्ति और स्वादुता मे महान् अन्तर है। यदि स्वाद का अनुभव नही हुआ तब मिश्री पदार्थ का मिलना केवल अन्धे की लाल-टेन के सदृश है। अत अब यावान् (जितना) पुरुषार्थ है उसे कटिबद्ध होकर इसी मे लगा देना श्रेयस्कर है जिससे आगमज्ञान के साथ उपेक्षा रूप स्वाद का लाभ हो जावे। आप जानते ही है मेरी प्रकृति अस्थिर है तथा प्रसिद्ध है, परन्तु जो अर्जित कर्म है उनका फल तो मुझे ही चखना पडेगा अत कुछ भी विषाद नही।

विषाद इस बातका है जो वास्तविक आत्मतत्त्व का घातक है, उसकी उपक्षीणता नही होती। उसके अर्थ निरन्तर प्रयास है। बाह्य पदार्थ का छोडना कोई कठिन नही, किन्तु अध्यवसान का छोडना कठिन है। क्योकि अध्यवसान के कारण छूट जाने पर भी उसकी उत्पत्ति अन्तस्तल की वासना से होती रहती है। उस वासना के विरुद्ध शस्त्र चला कर उसका निपात करना यद्यपि उपाय निर्दिष्ट

क्रिया है; परन्तु फिर भी वह क्या है ? केवल शब्दो की सुन्दरता छोड कर गम्य नही। दृष्टान्त तो स्पष्ट है—अग्निजन्य उष्णता जो जल मे है उसकी भिन्नता तो दृष्टि का विषय है। यहाँ तो क्रोध मे जो क्षमा की अप्रादुर्भूति है वह यावत् क्रोध न जावे तब तक कैसे व्यक्त हो। ऊपर से क्रोध न करना क्षमा का साधक नही। आशय मे वह न रहे, यही तो कठिन बात है। रहा उपाय तत्त्वज्ञान, सो तो हम आप सब जानते ही है। फिर भी कुछ गूढ रहस्य है, जो महानुभावो के समागम की अपेक्षा रखता है, यदि वह न मिले तब आत्मा ही आत्मा है, उसकी सेवा करना ही उत्तम है। उसकी सेवा क्या है ? ज्ञाता द्रष्टा और जो कुछ अतिरिक्त है, वह विकृत जानना। × × ×

श्रीमान् वर्णी जी,

योग्य इच्छाकार !

पत्र न देने का कारण उपेक्षा नही किन्तु अयोग्यता है। मै जब अन्तरङ्ग से विचार करता हू तो उपदेश देने की कथा तो दूर रही, अभी मैं सुनने और वाचने का भी पात्र नही। वचन चतुरता मे किसी को मोहित कर लेना पाण्डित्य का परिचायक नही। श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है—

कि काहदि वणवासो काय किलेसो विचित्तउववासो।
अज्झयमौणप्पहुदी समदारहियस्स समणस्स॥

समता के विना वनवास और काय क्लेश, नाना उपवास तथा अध्ययन मौन आदि कोई उपयोगी नही। अत इन बाह्य साधनो का मोह व्यर्थ ही है। दीनता और स्वकार्य मे अतत्परता ही मोक्षमार्ग का घातक है। जहा तक हो, इस पराधीनता के भावो का उच्छेद करना ही हमारा ध्येय होना चाहिये। विशेष कुछ समझ मे नही आता। भीतर बहुत कुछ इच्छा लिखने की होती है, परन्तु स्वकीय वास्तविक दशा पर दृष्टि जाती है तब अश्रुधारा का प्रवाह बहने लगता है। हा आत्मन् ! तूने यह मानवपर्याय पाकर भी निज तत्त्व की ओर लक्ष्य नही दिया। केवल इन बाह्य पञ्चेन्द्रिय विषयो की प्रवृत्ति मे ही सतोष मान कर ससार का क्या, अपने स्वरूप का अपहरण करके भी लज्जित न हुआ।

तद्विपयक अभिलाषा की अनुत्पत्ति ही चारित्र है। मोक्षमार्ग में संवर तत्त्व ही मुख्य है। तत्त्व की महिमा इसके बिना स्याद्वाद शून्य आगम अथवा जीवन शून्य शरीर अथवा नेत्रहीन मुख की तरह है। अत जिन जीवो को मोक्ष रुचता है उनका यही मुख्य ध्येय होना चाहिये कि अभिलाषाओ के अनुत्पादक चरणानुयोग पद्धति-प्रतिपादित साधनो की ओर लक्ष्य स्थिर कर निरन्तर स्वात्मोत्थ सुखामृत के अभिलाषी होकर रागादि शत्रुओ की प्रवल सेना का विध्वस करने मे भगीरथ प्रयत्न कर जन्म सार्थक किया जावे, किन्तु व्यर्थ न जावे, इसमे यत्नशील होना चाहिये। वहा तक पूर्ण प्रयत्न करना उचित है ? जहाँ तक पूर्णज्ञान की पूर्णता न होय।

"भावयेद् भदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
यावत्तावत्पराच्च्युत्वा ज्ञान ज्ञाने प्रतिष्ठितम्।"

अर्थ—यह भेदविज्ञान अखण्डधारा मे तब तक भावो कि जब तक परद्रव्य से रहित होकर ज्ञान-ज्ञान मे (आपने स्वरूप मे) ठहरे।

क्योकि सिद्धि का मूल मन्त्र भेद विज्ञान ही है। वही आत्म-तत्त्वरसवादी श्री अमृतचन्द्रसूरि ने कहा है—

"भेदविज्ञानत सिद्धा॰ सिद्धा ये किल केचन।
तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥"

अर्थ—जो कोई भी सिद्धि हुए है वे भेदविज्ञान से ही सिद्ध हुए है और जो बँधे है वे भेद विज्ञान के न होने से ही बन्ध को प्राप्त हुए है।

अत अव इन परनिमित्तक श्रेयोमार्ग की प्राप्ति के प्रयत्न मे समय का उपयोग न करके स्वावलम्बन को ओर दृष्टि ही इस जर्जरावस्था मे महती उपयोगिनी रामवाणतुल्य अचूक औषधि है। तदुक्तम्—

'इतो न किञ्चिनतो न किंचित्, यतो यतो यामि ततो न किंचित्।
विचार्य पश्यामि जगन्न किंचित् स्वात्मावबोधादधिक न किंचित्॥

अर्थ—इस तरफ कुछ नही है तथा जहा-जहा मैं जाता हू वहा-वहा भी कुछ नही है। स्वकीय आत्मज्ञान से बढकर कोई नही है।

इसका भाव यह है कि विचार स्वावलम्बन का शरण ही ससार बन्धन के मोचन का मुख्य उपाय है। मेरी तो यह श्रद्धा है जो सावर

म्यग्दशन, सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र का मूल है।

मिथ्यात्व की अनुत्पत्ति का नाम ही सम्यग्दर्शन है, अज्ञान की अनुत्पत्ति का नाम सम्यग्ज्ञान, तथा रागादि की अनुत्पत्ति यथाख्यात-चारित्र और योगानुत्पत्ति ही परम यथाख्यात चारित्र है अत सवर ही दर्शन-ज्ञान-चारित्राराधना के व्यपदेश को प्राप्त करता है। तथा इसी का नाम तप है, क्योकि इच्छा निरोध का नाम ही तप है।

मेरा तो दृढ विश्वास है कि इच्छा का न होना ही तप है अत तप आराधना भी यही है। इस प्रकार सवर ही चार आराधना है अत जहा पर से श्रेयोमार्ग की आकाक्षा का त्याग है वहा पर श्रेयोमार्ग है।

× × ×

श्रीयुत महानुभाव प० दीपचन्द्रजी वर्णी,

इच्छाकार !

अनुकूल कारणकुट के असद्भाव मे पत्र नही दे सका। क्षमा करना आपने जो पत्र लिखा वास्तविक पदार्थ ऐसा ही है अव हमे आवश्यकता इस वात की है कि प्रभु के उपदेश के पूर्वावस्थावत् आचरण द्वारा प्रभु के समान प्रभुता के पात्र हो जावे। यद्यपि अध्यवसान भाव पर-निमित्तक हैं। यथा—

न जातु रागादिनिमित्तभावमात्मात्मनो याति यथार्ककान्त ।
तस्मिन् निमित्त परसङ्ग एव वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत् ॥

अर्थ – आत्मा, आत्मा सम्बन्धी रागादिक की उत्पत्ति मे स्वय कदाचित् निमित्तता को प्राप्त नही होता है अर्थात् आत्मा स्वकीय रागादिक के उत्पन्न होने मे अपने आप निमित्त कारण नही है किन्तु उनके होने मे परवस्तु ही निमित्त है। जैसे अर्ककान्तमणि स्वय अग्नि-रूप नही परिणमता है किन्तु सूर्य किरण उस परिणमन मे निमित्त कारण है। यद्यपि यह सत्र है तथापि परमार्थ तत्त्व की गवेषणा मे वे निमित्त क्या वलात्कार अध्यवसानभाव के उत्पादक हो जाते है ? नही, किन्तु हम स्वय अध्यवसान द्वारा उन्हे विषय करते है। जव ऐसी वस्तु मर्यादा है तव पुरुषार्थ उन ससारजनक भावो के नाश का उद्यम करना ही हम लोगो को इष्ट होना चाहिये। चरणानुयोग की पद्धति मे निमित्त की मुख्यता से व्यख्यान होता है और अध्यात्मशास्त्र मे पुरुषार्थ की मुख्यता तथा उपादान की मुख्यता से व्याख्यान पद्धति है। और प्राय हमे इसी परिपाटी का अनुसरण करना ही विशेष फलप्रद होगा।

शरीर की क्षीणता यद्यपि तत्त्वज्ञान में बाह्य दृष्टि से कुछ बाधक है तथापि सम्यग्ज्ञानियो की प्रवृत्ति मे उतना बाधक नही हो सकती। यदि वेदना की अनुभूति मे विपरीतता की कणिका न हो तब मेरी समझ मे हमारी ज्ञान चेतना की कोई क्षति नही है

विशेष नही लिख सका। आजकल यहा मलेरिया का प्रकोप है। प्राय बहुत से इसके लक्ष्य हो चुके है। आप लोगो की अनुकम्पा से मैं अभी तक तो किसी आपत्ति का पात्र नही हुआ। कल की दिव्य-ज्ञानी जाने। अवकाश पाकर विशेप पत्र लिखने की चेष्टा करूंगा।

× × ×

श्रीयुत महाशय दीपचन्द्र जी वर्णी,

योग्य इच्छाकार!

आपका पत्र आया। आपके पत्र से मुझे हर्ष होता है और आपको मेरे पत्र से हर्ष होता है, यह केवल मोहज परिणाम की वासना है। आपके साहस ने आपमे अपूर्व स्फूर्ति उत्पन्न कर दी है। यही स्फूर्ति आपको ससार-योजनाओ से मुक्त करेगी। कहने, लिखने और वाक्चातुर्य मे मोक्ष मार्ग नही। मोक्षमार्ग का अकुर तो अन्त करण से निज पदार्थ मे ही उदित होता है। उसे यह परजन्य मन, वचन काय क्या जाने। यह तो पुद्गलद्रव्य की पर्यायो ने ही नाना प्रकार के नाटक दिखा कर उस ज्ञाता द्रष्टा को इस ससारचक्र का पात्र बना रक्खा है। अत अव दीप से तमोराशि को भेद कर और चन्द्र से परपदार्थ जन्य आताप का शमन कर सुधासमुद्र मे अवगाहन कर वास्तविक सच्चिदानन्द होने की योग्यता के पात्र बनिये। वह पात्रता आप मे है। केवल साहस करने का विलम्ब है। अब इस अनादि ससार-जननी कायरता को दग्ध करने से ही कार्यसिद्धि होगी। निरन्तर चिन्ता करने से क्या लाभ? लाभ तो आभ्यन्तर विशुद्धि से है। विशुद्धि का प्रयोजन भेदज्ञान है। भेदज्ञान का कारण निरन्तर अध्यात्मग्रन्थो की चिन्तना है। अत इस दशा मे परमात्मप्रकाश ग्रन्थ आपको अत्यन्त उपयोगी होगा। उपयोग सरल रीति से इस ग्रथ मे सलग्न हो जाता है। उप-क्षीण काय मे विशेष परिश्रम करना स्वास्थ्य का वाधक होता है अतः आप सानन्द निराकुलता पूर्वक धर्मध्यान मे अपना समययापन कीजिए। शरीर की दशा तो अब क्षीण सन्मुख हो रही है। जो दशा आपकी है वही प्राय सबकी है। परन्तु कोई भीतर से दुखी है तो कोई बाह्य से

दुखी है। आपको शारीरिक व्याधि है जो वास्तव मे अघातिकर्म-असातावेदनीयजन्य है वह आत्मगुण घातक नही। आभ्यन्तर व्याधि मोहजन्य होती है, जो कि आत्मगुण घातक है। अत आप मेरी सम्मति अनुसार वास्तविक दु ख के पात्र नही। आपको अब बडी प्रसन्नता इस तत्त्व की होनी चाहिए, जो मैं आभ्यन्तर रोग से मुक्त हूँ।

प० छोटेलाल जी से दर्शनविशुद्धि ! भाई साहब एक धर्मात्मा और साहसी वीर है। उनकी परिचर्या करना वैयावृत्यरूप है, जो निर्जरा का हेतु है। हमारा इतना शुभोदय नही जो इतने धीर, वीर, वरवीर, दु खसीर बन्धु की सेवा कर सके॥ × × ×

श्रीयुत वर्णी जी,

योग्य इच्छाकार !

पत्र मिला। मैं बराबर आपकी स्मृति रखता हू, किन्तु ठीक पता न होने से पत्र न दे सका। क्षमा करना। पैदल यात्रा, आप धर्मात्माओ के प्रसाद तथा पार्श्वनाथ प्रभु के चरणप्रसाद से बहुत ही उत्तम भावो से हुई। मार्ग मे अपूर्व शान्ति रही। कटक भी नही लगा तथा आभ्यन्तर को भी अशान्ति नही हुई। किसी दिन तो १९ मील तक चला। खेद इस बात का रहा कि आप और बाबा जी साथ मे न रहे। यदि रहते तो वास्तविक आनन्द रहता। इतना पुण्य कहा ?

बन्धुवर ! आप श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक, समाधिशतक और समयसार का ही स्वाध्याय करिये और विशेप त्याग के विकल्प मे न पडिये। केवल क्षमादिक परिणामो के द्वारा ही वास्तविक आत्मा का हित होता है। काय कोई वस्तु नही तथा आप हो स्वय कृश हो रही है। उसका क्या विकल्प। भोजन स्वयमेव न्यून हो गया है। जो कारण बाधक हैं उन्हे आप स्वय त्याग रहे है। मेरी तो यही भावना है—प्रभु पार्श्वनाथ आपकी आत्मा को इस बन्धन के तोडने मे अपूर्व सामर्थ्य दे।

आपके पत्र से आपके भावो की निर्मलता का अनुमान होता है। स्वतन्त्र भाव ही आत्मकल्याण का मूलमन्त्र है। क्योकि आत्मा वास्तविक दृष्टि से तो सदा शुद्ध ज्ञानानन्द स्वभाव वाला है। कर्म कलक से ही मलीन हो रहा है। सो इसके पृथक् करने की जो विधि है उस पर आप आरूढ है। बाह्य क्रिया की त्रुटि आत्मपरिणाम का बाधक

नही, और न मानना ही चाहिए। सम्यग्दृष्टि जो निन्दा और गर्हा करता है, वह अशुद्धोपयोग की है, न कि मन की या मन, वचन, काय के व्यापार की। इस पर्याय मे हमारा आपका सम्बन्ध न भी हो। परन्तु मुझे अभी विश्वास है कि हम और आप जन्मान्तर मे अवश्य मिलेगे। अपने स्वास्थ्य सम्बन्धी समाचार अवश्य एक मास मे एक बार दिया करे। मेरी आपके भाई से दर्शन विशुद्धि।

× × ×

श्रीयुत धर्मरत्न पण्डित दीपचन्द्र जी,

इच्छामि।

पत्र पढ कर सतोप हुआ, तथा आपका अभिप्राय जितनी मण्डली थी सबको श्रवण प्रत्यक्ष करा दिया। सब लोग आपके आशिक रत्नत्रय की भूरिश प्रशसा करते है।

आपने जो प० भूधरदास जी की कविता लिखी सो ठीक है। परन्तु वह कविता आपके ऊपर नही घटती। आप शूर है। देह की दशा, जैसी कवि ने कविता मे प्रतिपादित की है तदनुरूप ही है परन्तु इसमे हमारा क्या घात हुआ ? यह हमारे बुद्धिगोचर नही हुआ। घट के घात से दीपक का घात नही होता। पदार्थ का परिचायक ज्ञान है। अत ज्ञान मे ऐसी अवस्था शरीर की प्रतिभासित होती है एतावत् क्या ज्ञान तद्रूप हो गया ?

पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा बोद्धा न बोध्यादय,
यायात्कामपि विक्रिया तत इतो दीप प्रकाश्यादपि।
तद्वस्तुस्थितिबोधवन्ध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो,
रागद्वेषमया भवन्ति सहजा मुञ्चन्त्युदासीनताम्॥

अर्थ—पूर्ण, अद्वितीय, नही च्युत है शुद्ध बोध की महिमा जाकी, ऐसा जो बोद्धा है, वह कभी भी बोध्य पदार्थ के निमित्त से प्रकाश्य (घटादि) पदार्थ से प्रदीप की तरह कोई भी विक्रिया को प्राप्त नही होता है। इस मर्यादा विषयक बोध से जिसकी बुद्धि बन्ध्या है वे अज्ञानी हैं। वे ही राग-द्वेषादिक के पात्र होते है और स्वाभाविक जो उदासीनता है उसे त्याग देते हैं।

आप विज्ञ है अत कभी भी इस असत्य भाव को आलम्बन न देवेगे। अनेकानेक मर चुके तथा मरते है और मरेगे। इससे क्या आया ? एक दिन हमारी भी पर्याय चली जावेगी। इसमे कौनसी

आश्चर्य की घटना है। इसका तो आप जैसे विज्ञ पुरुषों को विचार कोटि से पृथक् रखना ही श्रेयस्कर है। जो यह वेदना असाता कर्म के उदय आदि कारण कूट होने पर उत्पन्न हुई और हमारे ज्ञान मे आयी। वेदना क्या वस्तु है? परमार्थ से विचारा जाय तो यह एक तरह मे सुख गुण मे विकृति हुई वह हमारे ध्यान मे आयी। उसे हम नहीं चाहते। इसमे कौन-सी विपरीतता? विपरीतता तो तव होती है जव उसे हम निज मान लेते है। विकारज-परिणति को पृथक् करना अप्रशस्त नही। अप्रशस्तता तो यदि हम उसी का निरन्तर चिन्तवन करते रहे और निजत्व को विस्मृत कर जावें, तव है।

अत जितनी भी अनिष्ट सामग्री मिले, मिलने दो। उसके प्रति आदरभाव से व्यवहार कर ऋणमोचन पुरुप की तरह आनन्द से साधु की तरह प्रवृत्ति करना चाहिये। निदान को छोडकर आर्तत्रय पष्ठ गुणस्थान तक होते है। थोडे समय तक अर्जित कर्म आया फल देकर चला गया। अच्छा हुआ, आकर हलकापन कर गया। रोग का निकलना ही अच्छा है। मेरी सम्मति मे निकलना, रहने की अपेक्षा प्रशस्त है। इसी प्रकार आपकी असाता यदि शरीर की जीर्ण-शीर्ण अवस्था द्वारा निकल रही है तव आपको वहुत आनन्द मानना चाहिये। अन्यथा यदि वह अभी नही निकलती तव क्या स्वर्ग मे निकलती? मेरी दृष्टि मे केवल असाता ही नही निकल रही, साथ ही मोह की अरति आदि प्रकृतिया भी निकल रही हैं। क्योकि आप इस असाता को सुखपूर्वक भोग रहे है। शान्तिपूर्वक कर्मों के रस को भोगना आगामी दु खकर नही।

वहुत कुछ लिखना चाहता हू परन्तु ज्ञान की न्यूनता से लेखनी रुक जाती है। वन्धुवर! मैं एक वात को आपसे जिज्ञासा करता हू, जितने लिखने वाले और कथन करने वाले तथा कथन कर वाह्य चरणानुयोग के अनुकूल प्रवृत्ति करने वाले तथा आर्ष वाक्यो पर श्रद्धालु व्यक्ति हुए है, अथवा है तथा होगे, वे क्या सर्व ही मोक्षमार्गी हैं? मेरी तो श्रद्धा नही। अन्यथा श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने लिखा है कि हे प्रभो! "हमारे शत्रु को भी द्रव्यलिङ्ग न हो" इस वाक्य की चरितार्थता न होती तो काहे को लिखते। अत पर की प्रवृत्ति देख रचमात्र भी विकल्प को आश्रय न देना ही हमारे लिये हितकर है। आपके ऊपर कुछ भी आपत्ति नही, जो आत्महित करने वाले है वे सिर

पर आग लगाने पर तथा सर्वाङ्ग अग्निमय आभूषण धारण करानें पर तथा यन्त्रादि द्वारा उपद्रव होने पर भी मोक्ष लक्ष्मी के पात्र होते है। मुझे तो इस आपकी आस्था और श्रद्धा देख कर इतनी प्रसन्नता होती है। प्रभो ! यह अवसर सर्व को दे। आपकी केवल श्रद्धा ही नही किन्तु आचरण भी अन्यथा नही। क्या मुनि को जब तीव्र व्याधि का उदय होता है, तब बाह्य चरणानुयोग आचरण के असद्भाव मे उनके छठवा गुणस्थान चला जाता है ? यदि ऐसा है तो उसें समाधि मरण के समय 'हे मुने ! इत्यादि सबोधन करके जो उपदेश दिया है वह किस प्रकार सगत होगा ? पीडा आदि मे चित्त चचल रहता है, इसका क्या यह आशय है—पीडा का बार-बार स्मरण हो जाता है। हो जाओ, स्मरण ज्ञान है और उसकी धारणा होती है, उसका बाह्य निमित्त मिलने पर स्मरण होना अनिवार्य है। किन्तु साथ मे यह भाव तो रहता है—यह चचलता सम्यक् नही। परन्तु मेरी समझ मे इस पर भी गम्भीर दृष्टि दीजिये। चचलता तो कुछ बाधक नही। साथ में उसके आरति का उदय और असाता की उदीरणा से दु खानुभव हो जाता है। उसे पृथक् करने की भावना रहती है। इसी से इसे महर्षियो ने आर्त्तध्यान की कोटी मे गणना की है। इस भाव के होने से पञ्चम गुणस्थान मिट जाता है ? यदि इस ध्यान के होने पर देश व्रत के विरुद्ध भाव का उदय श्रद्धा मे न हो तब मुझे तो दृढतम विश्वास है कि गुणस्थान की कोई भी क्षति नही। तरतमता ही होती है, वह भी उसी गुणस्थान में। ये विचारे जिन्होने कुछ नही जाना, कहा जावेगे, क्या करे, इत्यादि विकल्पो के पात्र होते है—कही जाओ, हमें उसकी मीमासा से क्या लाभ ? हम विचारे इस भाव से कहाँ जावेगे इस पर ही विचार करना चाहिये।

आपका सच्चिदानन्द, जैसा आपको निर्मल दृष्टि ने निर्णीत किया है, द्रव्यदृष्टि से वैसा ही है परन्तु द्रव्य तो भोग्य नही, भोग्य तो पर्याय है, अत उसके तात्त्विक स्वरूप के जो बाधक है, उन्हे पृथक करने की चेष्टा करना ही हमारा पुरुषार्थ है।

चोर की सजा देख कर साधु को भय होना मेरे ज्ञान में नही आता अत मिथ्यात्वादि क्रियासयुक्त प्राणियो का पतन देख हमे भय होने की कोई भी बात नही। हमको तो जब सम्यक् रत्नत्रय की

तलवार हाथ मे आ गई है और वह यद्यपि वर्तमान मे मोथरी धार वाली है परन्तु है तो तलवार । कर्मेन्धन को धीरे-धीरे छेदेगी, परन्तु छेदेगी ही । बड़े आनन्द से जीवनोत्सर्ग करना । अंश मात्र भी आकुलता श्रद्धा मे न लाना । प्रभु ने अच्छा ही देखा है । अन्यथा उसके मार्ग पर हम लोग न आते । समाधिमरण के योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, क्या पर निमित्त ही है ? नही ।

जहां अपने परिणामो मे शान्ति आई वही सर्व सामग्री है । अत हे भाई ! सर्व उपद्रवों के हरण मे समर्थ और कल्याणपथ के कारणो मे जो आपकी दृढ़तम श्रद्धा है वह उपयोगिनी तथा कर्मशत्रुवाहिनो की जयनशीला तीक्ष्ण असि-धारा है । मै तो आपके पत्र पढ कर समाधिमरण की महिमा अपने ही द्वारा होती है, निश्चय कर चुका हू । क्या आप उससे लाभ न उठावेंगे ? अवश्य ही उठावेंगे ।

नोट—मै विवश हो गया । अन्यथा अवश्य आपके समाधि मरण मे सहकारी हो पुण्य लाभ करता । आप अच्छे स्थान पर हो जावेंगे । परन्तु यहा पचम काल है अत हमारे सबोधन के लिए आपका उपयोग ही इस ओर न जावेगा । अथवा जावेगा ही तब बालकृत असमर्थता बाधक होकर आपको शान्ति देगी । इससे कुछ उत्तर काल की भावना नही करता ।

× × ×

श्रीयुत महाशय दीपचन्द्र जी वर्णी,

योग्य इच्छाकार !

बन्धुवर ! आपका पत्र पढकर मेरी आत्मा मे अपार हर्ष होता है कि आप इस रुग्णावस्था मे दृढ श्रद्धालु हो गये हैं । यही ससार से उद्धार का प्रथम प्रयत्न है । काय की क्षीणता कुछ आत्म-तत्त्व की क्षीणता मे निमित्त नही, इसको आप समीचीनतया जानते है । वास्तव मे आत्मा के शत्रु तो राग, द्वेष और मोह है । जो इसे निरन्तर इस दु खमय ससार मे भ्रमण करा रहे है । अत आवश्यकता इसकी है जो राग-द्वेष के अधीन न होकर स्वात्मोत्थ परमानन्द की ओर ही हमारा प्रयत्न सतत रहना ही श्रेयस्कर है ।

औदयिक रागादि भाव होवे, इसका कुछ भी रज नही करना चाहिए । रागादिको का होना रुचिकर नही होना चाहिए । बडे-बडे ज्ञानी जनो के राग होता है परन्तु उस राग मे रजकता के अभाव से

आगे उसकी परिपाटी-रोध का आत्मा को अनायास अवसर मिल जाता है। इस प्रकार औदयिक रागादिको की सन्तान का उपचय होते-होते एक दिन समूलतल से उसका अभाव हो जाता है और तब आत्मा अपने स्वच्छ स्वरूप होकर इस ससार की वासनाओ का पात्र नही होता। मैं आपको क्या लिखूं ? यही मेरी सम्मति है—जो अब विशेष विकल्पो को त्याग कर जिस उपाय से राग-द्वेष का आशय में अभाव हो वही आपका व मेरा कर्तव्य है। क्योंकि पर्याय का अवसान है। यद्यपि पर्याय का अवसान तो होगा ही फिर भी सबोधन के लिए कहा जाता है तथा मूढो को वास्तविक पदार्थ का परिचय न होने से बडा आश्चर्य मालूम पड़ता है।

विचार से देखिये—तब आश्चर्य को स्थान नही। भौतिक पदार्थो की परिणति देखकर बहुत से जन क्षुब्ध हो जाते है। भला, जब पदार्थ मात्र अनन्त शक्तियो का पुञ्ज है, तब क्या पुद्गल में यह बात न हो, यह कहा का न्याय है ? आजकल विज्ञान के प्रभाव को देख लोगो की श्रद्धा पुद्गल द्रव्य मे ही जागृत हो गई है। भला यह तो विचारिये, उसका उपयोग किसने किया ? जिसने किया उसको न मानना यही तो जडभाव है।

बिना रागादिक के कार्मण वर्गणा क्या कर्मादिरूप परिणमन को समर्थ हो सकती है ? तब यो कहिये—अपनी अनन्त शक्ति के विकास का बाधक आप ही मोहकर्म द्वारा हो रहा है। फिर भी हम ऐसे अन्धे है जो मोह की ही महिमा आलाप रहे है। मोह मे वलवत्ता देने वाली शक्तिमान् वस्तु की ओर दृष्टि प्रसार कर देखो तो धन्य उस अचिन्त्य प्रभाव वाले पदार्थ को कि जिसकी वक्रदृष्टि से यह जगत् अनादि से बन रहा है। और जहा उसने वक्रदृष्टि को सकोच कर एक समय मात्र सुदृष्टि का अवलम्बन किया कि इस ससार का अस्तित्वही नही रहता। सो ही समयसार मे कहा है—

कषाय कलिरेकत शान्तिरस्त्येकतो
भवोपहतिरेकत स्पृशति मुक्तिरप्येकत ।
जगत्त्रितयमेकत स्फुरति चिच्चकास्त्येकत
स्वभावमहिमात्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुत ॥

अर्थ—एक तरफ से कषायकालिमा स्पर्श करती है और एक तरफ से शान्ति स्पर्श करतो है। एक तरफ ससार का आघात है और

एक तरफ मुक्ति है। एक तरफ तीनो लोक प्रकाशमान है और एक तरफ चेतज्ञ आत्मा प्रकाश कर रहा है। यह वडे आश्चर्य की बात है कि आत्मा की स्वभाव महिमा अद्भुत मे अद्भुत विजय को प्राप्त होती है। इत्यादि अनेक पद्यमय भावो मे यही अन्तिम कर्ण-प्रतिभा का विपयहोता है जो आत्मद्रव्य की ही विचित्र महिमा है। चाहे नाना दु खाकीर्ण जगत् मे नाना वेप धारण कर नटरूप वहुरूपिया वने। चाहे स्वनिर्मित सम्पूर्ण लीला का सम्वरण करके गगनवत् पारमार्थिक निर्मल स्वभाव को धारण कर निश्चल तिष्ठे। यही कारण है। 'सर्व वै खल्विद ब्रह्म'—यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है, इस मे कोई सन्देह नही, यदि वेदान्ती एकान्त दुराग्रह को छोड देवे तव जो कथन है अक्षरश सत्य भासमान होने लगे। एकान्त दृष्टि ही अन्ध दृष्टि है। आप भी अल्प परिश्रम से कुछ इस ओर आइये। भला यह जो पञ्च स्थावर और त्रस का समुदाय जगत् दृश्य हो रहा है, क्या है ? क्या ब्रह्म का विकार नही ? अथवा स्वमत की ओर कुछ दृष्टि का प्रसार कीजिये। तव निमित्त कारण की मुख्यता से जो ये रागादिक परिणाम हो रहे हैं, क्या उन्हे पौद्गलिक नही कहा है ? अथवा इन्हे छोडिये। जहा अवधि ज्ञान का विपय निरूपण किया है वहा क्षयोपशम-भाव को भी अवधिज्ञान का विपय कहा है। अर्थात् पुद्गलद्रव्य सम्वन्धेन जायमानत्वात् क्षायोपशमिकभाव भी कथचित् रूपी है। केवलज्ञान का भाव अवधिज्ञान का विपय नही, क्योकि उसमे रूपी द्रव्य का सम्वन्ध नही है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि औदयिकभाववत् क्षायोपशमिक भाव भी कथचित् पुद्गल सम्वन्धेनजायमान होने से मूर्तिमान है न कि रूपरसादिमत्ता इनमे है। तद्वत् अशुद्धता के सम्वन्ध से जायमान होने से यह भौतिक जगत् भी कथचित् ब्रह्म का विकार है। कथचित् का यह अर्थ है—

जीव के रागादिक भावो के ही निमित्त को पाकर पुद्गल द्रव्य एकेन्द्रियादि रूप परिणमन को प्राप्त है। अत. यह जो मनुष्यादि पर्याय है वह दो असमानजातीय द्रव्य के सम्वन्ध से निष्पन्न है। न केवल जीव की है और न केवल पुद्गल की है। किन्तु जीव और पुद्गल के सम्वन्ध से जायमान है। तथा यह जो रागादि परिणाम है वे न तो केवल जीव के ही है और न केवल पुद्गल के है। किन्तु उपादान की अपेक्षा तो जीव के हैं और निमित्त कारण की अपेक्षा पुद्गल के हे।

और द्रव्यदृष्टि कर देखे तो न पुद्गल के है और न जीव के है। शुद्ध द्रव्य के कथन मे पर्याय की मुख्यता नही रहती अत यह गौण हो जाते है। जैसे पुत्र पर्याय स्त्री पुरुष दोनो के द्वारा सपन्न होती है। अस्तु, इससे यह निष्कर्ष निकला, यह जो रागादिक पर्याय है, वह केवल जीव की नही, किन्तु पौद्गलिक मोह के उदय से आत्मा के चरित्र गुण मे जो विकार होता है तद्रूप है। अत हमे यह नही समझना चाहिये कि हमारी इसमे क्या क्षति है? क्षति तो यह हुई जो आत्मा की वास्तविक परिणति थी वह विकृत भाव को प्राप्त हो गई। परमार्थ से क्षति का यह आशय है कि आत्मा मे जो रागादिक दोष हो जाते है वह न होवे। तब जो उन दोषो के निमित्त से यह जीव किसी पदार्थ मे अनुकूलता और किसी मे प्रतिकूलता की कल्पना करता था और उनके परिणमन द्वारा हर्ष विषाद कर वास्तविक निराकुलता (सुख) के अभाव मे आकुलित रहता था, शान्ति के आस्वाद की कणिका को भी नही पाता था। अब उन रागादिक दोषो के असद्भाव मे आत्मगुणरूप चारित्र की स्थिति अकम्प और निर्मल हो जाती है। उसके निर्मल निमित्त को अवलम्बन कर आत्मा का जो चेतना नामक गुण है वह स्वयमेव दृश्य और ज्ञेय पदार्थो का तद्रूप हो द्रष्टा और ज्ञाता शक्तिशाली होकर आगामी अनन्त काल स्वाभाविक परिणमनशाली आकाशादिवत् अकम्प रहता है। इसी का नाम भावमुक्ति है।

अब आत्मा मे मोह निमित्तक जो कलुषता थी वह सर्वथा निर्मूल हो गई, किन्तु अभी जो योगनिमित्तक परिस्पन्दन है वह प्रदेश प्रकम्पन को करता ही रहता है तथा तन्निमित्तक ईर्यापथास्रव भी साता वेदनीय का हुआ करता है। यद्यपि इसमे आत्मा के स्वाभाविक भाव की क्षति नही, फिर भी निरपवर्त्यआयु के सद्भाव मे यावत् आयु के निषेक है तावत् भावस्थिति को मेटने को कोई भी क्षम नही। 'जब अन्तर्मुहूर्त आयु का अवसान रहता है। तथा शेष जो नामादिक कर्म की स्थिति अधिक रहती है तब—उस काल मे तृतीय शुल्क ध्यान के प्रसाद से दण्ड कपाटादि द्वारा शेष कर्मों की स्थिति को आयु सम कर चतुर्दश गुणस्थान का आरोहण कर अयोग नाम को प्राप्त करता हुआ लघु पचाक्षर के उच्चारण कालसम गुण स्थान का काल पूर्ण कर चतुर्थ शुल्क ध्यान के प्रसाद से शेष प्रकृतियो का नाश कर परम यथा ख्यात

चारित्र का लाभ करता हुआ एक समय मे द्रव्यमुक्ति व्यपदेशता का लाभ कर मुक्ति साम्राज्य लक्ष्मी का भोक्ता होता हुआ लोकशिखर मे विराजमान होकर तीर्थंकर प्रभु के ज्ञान का विषय हो कर हमारे कल्याण मे सहायक हों, यहां हम सब को अन्तिम प्रार्थना है।

श्रीमान् बाबा भगीरथ जी महाराज आ गये, उनका आपको सस्नेह इच्छाकार। खेद इस बात का विभावजन्य हो जाता है जो आपकी उपस्थिति यहाँ न हुई। यदि होती तो हमे भी आपकी वैयावृत्य करने का अवसर मिल जाता, परन्तु हमारा ऐसा भाग्य कहा ? जो सल्लेखनाधारी एक सम्यग्ज्ञानी पचम गुणस्थानवर्ती जीव की प्राप्ति हो सके।

आपके स्वास्थ्य मे आभ्यन्तर तो क्षति है नही, जो है सो बाह्य है। उसे आप प्राय वेदन नही करते यही सराहनीय है। धन्य है आपको—जो इस रुग्णावस्था मे भी सावधान है। होना ही श्रेयस्कर है। शरीर की अवस्था अपस्मार वेगवत् वर्धमान-हीयमान होने से अध्रुव और शीत-दाह-ज्वारावेशवत् अनित्य है। ज्ञानीजन को ऐसा जानना ही मोक्षमार्ग का साधक है। कब ऐसा समय आवेगा जब इसमे वेदना का अवसर ही न आवे। आशा है एक दिन आवेगा, जब आप नि श्चल वृत्ति के पात्र होवेंगे। अब अन्य कार्यों से गौणभाव धारण कर सल्लेखना के ऊपर ही दृष्टि दीजिये और यदि कुछ लिखने की चुलबुल उठे तब उसी पर लिखने की मनोवृत्ति की चेष्टा कीजिये। मैं आपकी प्रशसा नही करता, किन्तु इस समय ऐसा भाव, जैसा कि आपका है, प्रशस्त है।

पत्र मिल गया, पत्र न देने का अपराध क्षमा करना।

× × ×

श्रीयुत महाशय दीपचन्द्र जी वर्णी साहब !

योग्य इच्छाकार

पत्र से आपके शारीरिक समाचार जाने, अब यह जो शरीर पर है, शायद इससे अल्प ही काल मे आपकी पवित्र भावनार्थ आत्मा का सम्बन्ध छूट कर वैक्रियिक शरीर से हो जावे। मुझे यह दृढ श्रद्धान है कि आपकी असावधानी शरीर मे होगी, न कि आत्मचिन्तन मे। यद्यपि मोह के सद्भाव से विकलता की सम्भावना है तथापि प्रबल

मोह के अभाव में वह आत्मचिन्तन का आंशिक भी बाधक नही हो सकती। मेरी तो दृढ श्रद्धा है कि आप अवश्य इसी पथ पर होंगे और अन्त तक दृढतम परिणामो द्वारा इन क्षुद्र वाधाओ की ओर ध्यान भी न देंगे यह अवसर ससारलतिका के घात का है।

देखिये, जिस असातादि कर्मों की उदीरणा के अर्थ महर्षि लोग उग्रोग्र तप धारण करते-करते शरीर को इतना बना देते हैं, जो पूर्व लावण्य का अनुमान भी नही होता। परन्तु आत्मदिव्य शक्ति से भूषित ही रहते है। आपका धन्य भाग्य है जो विना ही निर्ग्रन्थ पद धारण के कर्मो का ऐसा लाघव हो रहा है जो स्वयमेव उदय मे आकर पृथक हो रहे है। इसका जितना हर्ष मुझे है वह मै नही कह सकता, वचनातीत हैं।

आपके ऊपर से भार पृथक् हो रहा है फिर आपके सुख की अनुभूति तो आप ही जाने। शान्ति का मूल कारण न साता है और न असाता, किन्तु साम्यभाव है जो कि इस समय आपके हो रहे है। अब केवल स्वात्मानुभव ही रसायन-परमौषधि है। कोई-कोई तो क्रम-क्रम से अन्नादि का त्याग कर समाधिमरण का यत्न करते है आपके पुण्योदय से वह स्वयमेव छूट गया है। वही न छूटा, साथ-साथ असातोदय द्वारा दु खजनक सामग्री का भी अभाव हो रहा है। अत हे भाई! आप रचमात्र क्लेश न करना, जो वस्तु पूर्व अर्जित है यदि वह रस देकर स्वयमेव आत्मा को लघु बना देती है तो इससे विशेष और आनन्द का क्या अवसर होगा? मुझे अन्तरङ्ग से इस बात का पश्चात्ताप हो जाता है जो अपने अन्तरङ्ग बन्धु की ऐसी अवस्था मे वैयावृत्य न कर सका।

माघवदी १४ स० १९९१

आ० शुभचितक
गणेशप्रसाद वर्णी